२

जुलाई-दिसंबर २००१
(संयुक्तांक)

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

कहानियां

पंकज कुमार ● नरेंद्रकौर छाबड़ा ● रजनी कुमार पंड्या
डॉ. सतीश दुबे ● कनक लता ● जसवंत सिंह 'विरदी'

उपन्यास-अंश

डॉ. रूपसिंह चंदेल

आमने-सामने

डॉ. तेज सिंह

सागर / सीपी

डॉ. रामधारी सिंह 'दिवाकर'

२० रुपये

हमारे आजीवन सदस्य

प्रारंभ से लेकर अब तक 'कथाबिंब' ने काफी उतार-चढ़ाव देखे हैं. इस दौरान जिन व्यक्तियों या संस्थाओं से हमें सहयोग मिला हम उन सभी के आभारी हैं. 'कथाबिंब' का देश में, एक व्यापक पाठक वर्ग बन गया है. हमारी इच्छा है कि 'कथाबिंब' और अधिक लोगों द्वारा पढ़ी जाये.

आजीवन सदस्यों के हम विशेष आभारी हैं. जिनके सहयोग ने हमें ठेस आधार दिया है. सभी आजीवन सदस्यों से निवेदन है कि वे एक या दो या अधिक लोगों को आजीवन सदस्यता स्वीकारने के लिए प्रेरित करें. संभव हो तो अपने संपर्क के माध्यम से विज्ञापन भी उपलब्ध करायें. यदि विज्ञापन दिलवा पाना संभव है तो कृपया हमें लिखें.

- संपादक

१) श्री अरुण सक्सेना, नवी मुंबई
२) डॉ. आनंद अस्थाना, हरदोई
३) स्वामी विवेकानंद हाई स्कूल, कुर्ला, मुंबई
४) डॉ. डी. एन. श्रीवास्तव, मुंबई
५) डॉ. वेणुगोपाल, मुंबई
६) डॉ. नागेश करंजीकर, मुंबई
७) डॉ. प्रेम प्रकाश खन्ना, मुंबई
८) श्री हरभजन सिंह दुआ, नवी मुंबई
९) डॉ. सत्यनारायण त्रिपाठी, मुंबई
१०) श्री उमेशचंद्र भारतीय, मुंबई
११) श्री अमर ठकुर, मुंबई
१२) श्री बी. एम. यादव, मुंबई
१३) श्री संतोष कुमार अवस्थी, बड़ौदा
१४) सुश्री शशि मिश्रा, मुंबई
१५) श्री भगीरथ शुक्ल, बोईसर
१६) श्री कन्हैया लाल सराफ, मुंबई
१७) श्री अशोक आंद्रे, नयी दिल्ली
१८) श्री कमलेश भट्ट 'कमल', मथुरा
१९) श्री राजनारायण बोहरे, दतिया
२०) श्री कुशेश्वर, कलकत्ता
२१) सुश्री कनकलता, धनबाद
२२) श्री भूपेंद्र शेठ 'नीलम', जामनगर
२३) श्री संतोष कुमार शुक्ल, शाहजहांपुर
२४) प्रो. शाहिद अब्बास अब्बासी, पांडिचेरी
२५) सुश्री रिफ़अत शाहीन, गोरखपुर
२६) श्रीमती संध्या मल्होत्रा, अनपरा, सोनभद्र
२७) डॉ. वीरेंद्र कुमार दुबे, चौरई
२८) श्री कुमार नरेंद्र, दिल्ली
२९) श्री मुकेश शर्मा, गुड़गांव
३०) डॉ. देवेंद्र कुमार गौतम, सतना
३१) श्री सत्यप्रकाश, मुंबई
३२) डॉ. नरेश चंद्र मिश्र, मुंबई
३३) डॉ. लक्ष्मण सिंह बिष्ट, 'बटरोही,' नैनीताल
३४) श्री एल. एम. पंत, मुंबई
३५) श्री हरिशंकर उपाध्याय, मुंबई
३६) श्री देवेंद्र शर्मा, मुंबई
३७) श्रीमती राजेंद्र कौर, नवी मुंबई
३८) डॉ. कैलाश चंद्र भल्ला, नवी मुंबई
३९) श्री नवनीत ठक्कर, अहमदाबाद
४०) श्री दिनेश पाठक 'शशि', मथुरा
४१) श्री प्रकाश चंद्र श्रीवास्तव, वाराणसी
४२) डॉ. हरिमोहन बुधौलिया, उज्जैन
४३) श्री जसवंत सिंह विरदी, जालंधर
४४) प्रधानाध्यापक, 'ब्लू बेल' स्कूल, फतेहगढ़
४५) डॉ. कमल चोपड़ा, दिल्ली
४६) श्री आर. एन. पांडे, मुंबई
४७) डॉ. सुमित्रा अग्रवाल, मुंबई
४८) श्रीमती विनीता चौहान, नवी मुंबई
४९) श्री सदाशिव 'कौतुक', इंदौर
५०) श्रीमती निर्मला डोसी, मुंबई
५१) श्रीमती नरेंद्र कौर छाबड़ा, औरंगाबाद
५२) श्री दीप प्रकाश, मुंबई
५३) श्रीमती मंजु गोयल, नवी मुंबई
५४) श्रीमती सुधा सक्सेना, नवी मुंबई
५५) श्रीमती अनीता अग्रवाल, धौलपुर
५६) श्रीमती संगीता आनंद, रांची

जुलाई - दिसंबर २००१
(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना 'अरविंद'

संपादिका
मंजुश्री

संपादन सहयोग
प्रबोध कुमार गोविल
देवमणि पांडेय
जय प्रकाश त्रिपाठी
अशोक वशिष्ठ

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

● सदस्यता शुल्क ●
आजीवन : ५०० रु., त्रैवार्षिक : १२५ रु.
वार्षिक : ५० रु.
(वार्षिक शुल्क ५ रु. के डाक टिकटों के रूप में भी स्वीकार्य है)
विदेश में (समुद्री डाक से)
वार्षिक : १५ डॉलर या १२ पौंड
कृपया सदस्यता शुल्क चैक (कमीशन जोड़कर) मनीऑर्डर, डिमान्ड ड्राफ्ट, पोस्टल ऑर्डर द्वारा केवल 'कथाबिंब' के नाम ही भेजें.

● संपर्क ●
ए-१० 'बसेरा,'
ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई - ४०० ०८८
फोन : ५५१ ५५४१ व ५५५ ५८२२
टेलीफैक्स : ५५५ २३४८
e-mail : kathabimb@yahoo.com

एक प्रति का मूल्य : १५ रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु १५ रु. के डाक टिकट भेजें.
(सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)

क्रम

कहानियां
|| ५ || बीच का रास्ता / पंकज कुमार
|| ९ || कर्फ्यू / नरेंद्रकौर छाबड़ा
|| १३ || दस का नोट / रजनी कुमार पंड्या
|| १९ || समर्पण / सतीश दुबे
|| २५ || सवाल-दर-सवाल / कनक लता
|| २९ || दरार / जसवंत सिंह विरदी

उपन्यास अंश
|| ३५ || नहान / डॉ. रूपसिंह चंदेल

लघुकथाएं
|| ४१ || संकेत / कृष्ण मनु
|| ४७ || जवाब, उसके लिए / डॉ. प्रद्युम्न भल्ला

ग़ज़लें / कविताएं
|| ७ || ग़ज़ल / आकाश अशेष
|| ८ || थोड़ा सा सत्तू खा लेंगे / हरीश दुबे
|| ८ || ग़ज़लें / सत्यप्रकाश शर्मा
|| १८ || उजाला / मोती लाल
|| २८ || रीते रह गये क्षण, अहसास / वर्षा जतकर
|| ५२ || यात्रा / सुरेंद्र रघुवंशी
|| ५७ || समय बंद दरवाज़ा / जितेन साई
|| ५७ || ग़ज़ल / बिमल कुमार 'अमन'

स्तंभ
|| ४ || 'कुछ कही, कुछ अनकही'
|| ४२ || आमने-सामने / डॉ. तेज सिंह
|| ४८ || सागर-सीपी / डॉ. रामधारी सिंह 'दिवाकर'
|| ५३ || पुस्तक-समीक्षाएं

लेटर बॉक्स

⌘ 'कथाबिंब' का अप्रैल-जून अंक मिला. आपने जिन चार बिंदुओं पर बेबाक टिप्पणियां की हैं, उनसे पाठकीय मानसिकता बनती है. डॉ. महाराज कृष्ण जैन ने अपने कहानी लेखन महाविद्यालय से जो साहित्यिक जीवन-यात्रा पूरी की है, उनके इस अवदान से वे अमर रहेंगे. पत्रिका की सामान्य मूल्य-वृद्धि से 'कथाबिंब' के पाठकों को कोई फ़र्क नहीं पड़ेगा.

इस अंक की कहानियों में धनजीत कौर की कहानी 'संदेह के घेरे' विशेष पसंद आयी. वैसे चारों कहानियां अपनी सफल अभिव्यक्ति के लिए पठनीय बन पड़ी हैं. 'सागर-सीपी' स्तंभ के अंतर्गत हिमांशु जोशी जी से बलराम जी की बातचीत इस अंक को यादगार बनाये रखने के लिए सक्षम है. श्री जोशी जी द्वारा फणीश्वरनाथ रेणु पर की गयी टिप्पणी किसी भी साहित्य-माफियाओं की आंखें चौंधियाने के लिए काफी ही नहीं, क्रोश-शीलात्मक भी है. उन्होंने आज की अधिकांश पत्र-पत्रिकाओं की स्थितियों पर भी अपनी बेबाक टिप्पणी की है कि वहां भी सीमित स्वार्थों का साया है. कम से कम 'कथाबिंब' इस आक्षेप से बचने के लिए संज्ञान ले. चंद्रसेन 'विराट,' अवतंश रजनीश और रमेश मनोहरा की रचनाएं पसंद आयीं.

भोला पंडित 'प्रणयी,'

बंधु सदन, गीतवास, अररिया-८५४३१२ (बिहार)

⌘ 'कथाबिंब' का अप्रैल-जून २००१ अंक मिला. पांचों कहानियां अच्छी हैं. विजय की कहानी 'रणछोड़ सिंह' लेखकों, साहित्यकारों को बहुत पसंद आयेगी. संगीता आनंद, उषा भटनागर, और धनजीत कौर की कहानियां, सामान्य पाठकों को काफी देर तक सोचने पर विवश करने वाली हैं. उषा भटनागर की कहानी 'हम ज़िंदा हैं' बहुत दिन तक याद रहेगी.

'सागर-सीपी' में हिमांशु जोशी से बलराम की भेंटवार्ता बहुत अच्छी लगी. इस प्रकार 'कथाबिंब' ने अनेक अच्छे साहित्यकारों से परिचय कराया है. हिमांशु जोशी के बारे में इतनी जानकारी अन्यत्र मिलना संभव नहीं है. पुस्तक समीक्षाएं अच्छी लिखी गयी हैं. माया 'शबनम' के 'कहानी-संग्रह' की समीक्षा अच्छी लगी.

'कुछ कही, कुछ अनकही' में हमेशा की तरह राजनीतिज्ञों के बारे में बहुत स्पष्ट विचार व्यक्त किये गये हैं. सदन में चुने हुए व्यक्तियों में एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं मिल पाता जिसे मुख्य मंत्री बनाया जा सके. यह जनता के साथ विश्वासघात है. जब बहुमत निचले सदन में होना आवश्यक होता है तब ऊपरी सदन से या बाहर से मुख्य मंत्री या प्रधान मंत्री नहीं बनना चाहिए. तामिलनाडु की उलट-बांसी सचमुच दुखद स्थिति है.

नरसिंह नारायण,

१३२६ विवेकानंद नगर, सुल्तानपुर-२२८००१ (उ. प्र.)

⌘ 'कथाबिंब' का अप्रैल-जून अंक मिला. 'सागर-सीपी' में हिमांशु जोशी से बातचीत बड़ी अच्छी रही. यह जानकर सुखद आश्चर्य हुआ कि हिंदी में माफिया के घर कर लेने के बावजूद उसके प्रभाव से दूर रह जोशी जी की कृतियों के कई-कई संस्करण निकले एवं उनके अनुवाद भारत की लगभग सभी भाषाओं एवं कुछ विदेशी भाषाओं में भी हुए. लोगों से तो यही सुनने में आता था कि हिंदी में गीता प्रेस गोरखपुर के प्रकाशन या गुलशन नंदा जैसे ही बिकते हैं. हिमांशु जोशी की यह बात बड़ी सटीक प्रतीत हुई कि 'साहित्य में शॉर्टकट नहीं है,' मगर लोग शॉर्टकट तलाशते ही रहते हैं.

कुल मिलाकर अंक पठनीय बन पड़ा है. 'कथाबिंब' की अपनी विशिष्ट पहचान बनती जा रही है. नये लेखकों की राह प्रशस्त करने वाली आपकी नीति एवं उदारता उल्लेखनीय है.

'कुछ कही, कुछ अनकही' के क्या कहने. प्रथम बिंदु में आप बहुत कुछ कह गये.

चंद्रशेखर दुबे,

२४२ तिलक नगर, इंदौर-४५२ ००१

⌘ 'कथाबिंब' का अप्रैल-जून २००१ का अंक मुझे अमरीका से लौटने पर अपने पुराने पते पर मिला. वह पता तो स्थायी है, पर विदेश में रहने के कारण हम लोग डाक अपनी बेटी के घर मंगवाते हैं, पत्रिका वहीं भिजवाया करें. वह हमारे पास भेज देगी.

आपकी 'कथाबिंब' हिंदी साहित्य को बेजोड़ भेंट है. पत्रिकाओं के प्रकाशन की समस्याओं को झेलते हुए आप जो कर रहे हैं, वह वंदनीय है. धन्यवाद ही कह सकता हूं. हिंदी ने अभी तक पुस्तकों और पत्रिकाओं को जन-जन तक पहुंचाने के सही उपकरण नहीं बनाये हैं, क्या करें.

अरविंद कुमार,

ब्लॉक ३, विला १, ईरोज गार्डन,
चार्मवुड विलेज, नयी दिल्ली-११००४४

⌘ 'कथाबिंब' का अप्रैल-जून २००१ का अंक मिला. उषा भटनागर की कहानी 'हम ज़िंदा हैं' अंक की सर्वश्रेष्ठ रचना लगी. आज के बदलते परिवेश में मानवीय एवं नैतिक मूल्यों का क्षय जिस प्रकार से दिन पर दिन हो रहा है वह इस कहानी में बहुत अच्छी तरह से चित्रित किया गया है. संगीता आनंद की कहानी का शीर्षक मुझे बहुत सटीक नहीं लगा. पं. किरण मिश्र की आत्मरचना अच्छी लगी, साथ ही साथ 'सागर-सीपी' में हिमांशु जोशी से लिया साक्षात्कार पसंद आया.

ग़ज़लों में केवल अवंतश रजनीश की ग़ज़लों ने प्रभावित किया. हेमंत श्रीवास्तव की कविता 'जन्म भूमि' अच्छी लगी. दुख के इस समय में श्रीवास्तव परिवार को मेरी तरफ से हार्दिक संवेदनाएं.

मदन मोहन सक्सेना,

१०१/१५, टाइप बी, बी. ए. आर. सी. कॉलोनी,
बोईसर (ठाणे)- ४०१५०४

⌘ 'कथाबिंब' का अप्रैल-जून २००१ का अंक पाकर अत्यंत प्रसन्नता की अनुभूति हुई. आमुख देखकर ही चित्र गदगद हो गया. 'कुछ कही, कुछ अनकही' में 'वह (लेखक) अपने चारों ओर घटित हुए को बारीकी से देखकर आत्मसात करके अपने मानस की हांडी में पका कर कागज़ पर परोसता है.' जैसे यथार्थ को आपने सर्वोच्च स्थान दिया है. डॉ. महाराज कृष्ण जैन और उर्मि कृष्ण जी के विषय में आपने पाठकों को नवीन जानकारी दी, साधुवाद.

मानव संवेदनाओं को उकेरती सभी कहानियां सामाजिक सरोकार से जुड़ी दिखती हैं. श्री पी. एन. जायसवाल ने 'अरे जाने दो' में पुलिस का बेबाक अंकन किया है. कहानीकार ने यथार्थ दृष्टि उकेरी है.

उषा भटनागर की शैली अनूठी है. 'हम ज़िंदा हैं' कहानी में उषा जी ने महाकुंभ का जीवंत वर्णन किया है. ये सारी कहानियां शिक्षा देती हैं. आमने-सामने में पं. किरण मिश्र 'अयोध्यावासी' का साक्षात्कार बहुत भाया. मुंबई के देवदीप-संपादक डॉ. कपिल पांडेय और जनमोर्चा दैनिक फैजाबाद के सहसंपादक श्री रमेश त्रिपाठी जी द्वारा पं. किरण मिश्र के जीवन-संघर्ष की चर्चाएं मैंने सुनी हैं. इस आत्मरचना से मिश्र जी के विषय में और भी नयी जानकारी मिली. आपका यह स्तंभ वाकई प्रशंसनीय है. 'सागर-सीपी' में श्री हिमांशु जोशी से बलराम की बातचीत उत्कृष्ट है. साहित्यकारों के लिए पथ प्रदर्शक है.

श्री चंद्रसेन विराट, यश मालवीय, रमेश मनोहरा, उपेंद्र, अवतंश रजनीश, उरेंद्र, हेमंत श्रीवास्तव, शैलेंद्र जी की रचनाएं मनोहारी हैं. चयन आप बड़ा पारदर्शी करते हैं. दिनेश पाठक 'शशि,' आनंद बिल्थरे और डॉ. सुरेंद्र गुप्त की लघुकथाएं श्रेष्ठ हैं. पुस्तक समीक्षा स्तंभ सुंदर लगा. वर्तमान युग में आप यह साधना कर रहे हैं. बधाई स्वीकारें.

डॉ. हरिप्रसाद दुबे,
गयादेवी नगर, परमानंदपुरम, रामपुर भगन,
फैजाबाद-२२४२०३ (उ. प्र.)

⌘ मैं 'कथाबिंब' का आजीवन सदस्य हूं. वैसे गुजराती भाषी होते हुए भी राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रति बेहद लगाव के कारण इसके प्रचार-प्रसार, अध्ययन-अध्यापन के साथ जुड़ा हुआ हूं. इस कारण से अच्छी पत्रिकाओं की हमेशा तलाश रहती है, पर मुश्किल से ऐसी पत्रिकाएं हाथ लगती हैं.

एक मित्र के घर 'कथाबिंब' को पहली बार देखा तो देखते ही पत्रिका के प्रति आकर्षित हुआ. वहीं पर कुछ पन्ने पलटे तो बेहद खुशी हुई. आजकल पत्रिका निकालना बहुत ही कठिन काम है. हां, कुछ सीमित और असाहित्यिक उद्देश्यों के साथ प्रकाशित हो रही पत्रिकाओं की बात अलग है.

'कथाबिंब' अपने आप में एक अनोखी और बेजोड़ पत्रिका है, जो अपने नाम को भी पूर्णतया सार्थक करती है. उसका शरीर और उसकी आत्मा दोनों न सिर्फ पुष्ट बल्कि स्तरीय मायने रखती हैं. ऐसी पत्रिका के प्रकाशन के लिए आपको अंतर्मन से बधाई ! फिलहाल कुछ पंक्तियां अनायास ही उभर आयीं :

कुछ संभला-सा पाठक हूं मैं,
'कथाबिंब' का ग्राहक हूं मैं,
दुर्लभ ऐसी पत्रिकाएं,
ना यों कहता नाहक हूं मैं.
कितनी बेहतर छपें कथाएं,
जिसका हरदम याचक हूं मैं,
दौर ग़ज़ल का चले इसी में
गीत-नज्म का भावक हूं मैं.
पढ़ा-पढ़ाया मंत्र जपूं ना,
दिल से इसका चाहक हूं मैं.

डॉ. नवनीत ठक्कर,
९, मंगल विला अर्पाटमेंटस, रामबाग,
मणिनगर, अहमदाबाद-३८०००८

⌘ अप्रैल-जून अंक बड़ा सुंदर-सुघड़ है. कलेवर में निखार है. चंद्रसेन विराट की कविता सूर्य के प्रति शब्दों का अर्घ्य है - चाहे वह अस्ताचलगामी ही क्यों न हों ! कहानियां रुचिकर हैं.

आमने/सामने के अंतर्गत किरण मिश्र 'किरण' से लेकर पं. किरण मिश्र 'अयोध्यावासी' तक की संघर्ष यात्रा पढ़कर लगा कि मिश्र जी ने बड़े संयम और नम्रता से प्रस्तुति की है. वस्तुतः उनकी रामकहानी आम कहानी बन कर रह गयी है. बंबई में ऐसी कितनी ही संघर्ष कथाएं पढ़ने और सुनने को मिलेंगी. यदि मिश्रजी ने अपनी कविता का उद्धरण दिया होता तो शायद कुछ बात बनती -

आदर्शी जीवन अभिशाप हो गया
चरणों का छूना भी पाप हो गया.
छली गयी हर युग में एकलव्यी भावना
कटे-कटे हाथों से शस्त्र पड़ा थामना.
हर नवीन चिंतन को शाप हो गया
आदर्शी जीवन अभिशाप हो गया.
दंभ भावना निगली कितनों के किस्सों को
व्यावसायिक गुरुता ही निगल गयी शिष्यों को.
साहित्यिक जीवन संताप हो गया
आदर्शी जीवन अभिशाप हो गया.
जो स्थापित कर न सके जीवन की नीतियां
उड़ गयी हवा में हैं, जिनकी सब रीतियां.
स्थापन ही जैसे एकताप हो गया
आदर्शी जीवन अभिशाप हो गया.
रचना एक ऊर्जा है साधक मन आंगन की
रचना मोहताज नहीं है स्वयं प्रकाशन की.
शोषकों में स्वर किरण प्रताप हो गया
आदर्शी जीवन अभिशाप हो गया.

(शेष पृष्ठ -५७ पर देखें)

कुछ कही, कुछ अनकही

रचनाकार किसी भी विधा का क्यों न हो, अगर वह कुछ ठोस देना चाहता है तो उसे यह तय करना लाजमी होगा कि वह किस प्रकार के विषयों का चयन करे - लेखक ऐसे विषयों को कलमबद्ध करे जो हमारे आज के सरोकारों से सीधे संबद्ध हों. अच्छी रचना के लिए समकालीनता पहली शर्त है. कुछ कथ्य या विषय विधा का चुनाव स्वयं कर लेते हैं - एक बात लघुकथा के माध्यम से कही जा सकती है और उसी विषय पर कहानी भी लिखी जा सकती है. अंततः लेखक को यह भी देखना होता है कि वह रचना के माध्यम से जो कुछ कहना चाहता है वह पाठक तक पूरी तरह संप्रेषित हुआ अथवा नहीं. यानी संप्रेषणीयता अच्छी रचना की दूसरी कसौटी हुई. भाषा और प्रस्तुतीकरण संप्रेषणीयता के ही अंग हैं.

●

अब इस अंक की कहानियों पर कुछ बात - 'बीच का रास्ता,' धनेसरा नाम के एक साधारण मेहनतकश, सच्चे आदमी की कहानी है. जो किसी का जी नहीं दुखाना चाहता, चाहें उसे व्यक्तिगत नुकसान ही क्यों न उठाना पड़े. 'दंगा' न्यूज चैनलों के लिए महज़ एक ख़बर है और अक्सर बहुत ज़ल्दी स्थिति पर नियंत्रण भी पा लिया जाता है. किंतु दंगाग्रस्त क्षेत्र के लोग कर्फ्यू के दौरान जिस तनाव से गुज़रते हैं वह नरेंद्र कौर छाबड़ा ने बखूबी चित्रित किया है. कर्फ्यू के दौरान जब घर में खाने के लिए कुछ नहीं होता तो भूख न हिंदू होती है, न मुसलमान. वैसे भी भूख का कोई चेहरा नहीं होता. जमींदारी प्रथा ख़तम हुए अरसा हो गया है लेकिन आज भी हमारे गांवों में जिसकी लाठी उसकी भैंस की स्थिति बरकरार है. पैसे के बल पर व्यवस्था को पंगु बनाना बहुत आसान है. किंतु इसी के साथ यदि कुछ लोग एकजुट हो जायें तो अच्छे-अच्छों के छक्के छूट जाते हैं ('समर्पण', डॉ. सतीश दुबे). लेखिका कनकलता ने अपनी कहानी 'सवाल-दर-सवाल' में अनेक सवाल उठाये हैं. कोयले की खानों में रोज ही जाने कितने मजदूर अनजाने ही जल समाधिस्थ हो जाते हैं. किंतु ऐसा कब तक होता रहेगा ? किसी के पास इसका जवाब नहीं है.

'बुरी नज़र वाले तेरा मुंह काला,' 'अनारकली, भरके चली' या इसी तरह के, ट्रकों के पीछे लिखे कुछ अन्य पद्यांश पढ़कर हम मुस्कुरा कर रह जाते हैं, परंतु ट्रक ड्राइवर के परिवार अपनी गाड़ी किस तरह चलाते हैं, हम शायद सोच भी नहीं सकते. पति-पत्नी जब कभी मिलते भी हैं तो एक-दूसरे के प्रति शक के कारण सहज नहीं हो पाते. 'दरार' कहानी में 'विरदी' जी ने यही विषय लिया है. गुजराती के प्रतिष्ठित लेखक रजनीकुमार पंड्या की कहानी 'दस का नोट' का ताना बाना कुछ अलग तरह का है. कहानी बहुत धीरे-धीरे खुलती है और मन में एक गुदगुदी पैदा कर समाप्त हो जाती है.

●

बहुत विवश होकर यह अंक संयुक्तांक के रूप में निकालना पड़ रहा है. लेखकों के सहयोग के हम आभारी हैं. इसके चलते हमें रचनाओं का अभाव नहीं रहता लेकिन विज्ञापनों की कमी हमेशा ही बनी रहती है. इतने सालों के बाद भी कोई स्थायी व्यवस्था नहीं हो पायी है. पृष्ठ-६० पर, वर्ष २००१ में प्रकाशित सभी कहानियों का विवरण दिया गया है. पाठकों से निवेदन है कि वे अपने चयन क्रम से हमें अवगत करायें. आपके अभिमतों के आधार पर, अगले अंक में 'रेखा स्मृति पुरस्कार' घोषित किये जायेंगे. जिन पाठकों का क्रम हमारी अंतिम सूची से मेल खायेगा उन्हें 'कथाबिंब' की त्रैवार्षिक सदस्यता पुरस्कार स्वरूप प्रदान की जायेगी.

●

११ सितंबर को आतंकवाद का एक वीभत्स चेहरा दुनिया के सामने आया. उसने सिर्फ अमरीका को ही नहीं पूरे विश्व को दहला कर रख दिया. बिना किसी शक-शुबाह के यह मान लिया गया कि यह काम ओसामा बिन लादिन ने करवाया होगा. आनन-फानन में उत्तरी-सेनाओं और पाकिस्तान की मदद से आतंकवाद को ख़त्म करने के बहाने अमरीका ने अफगानिस्तान पर कब्जा कर लिया. ओसामा बिन लादिन मरा है या ज़िंदा, और वह कहां है यह आज भी किसी को पता नहीं है. वैसे लादिन अमरीका की ही उपज है. जैसे इंदिरा गांधी ने भिंधरनवाले को पैदा किया था. यहां यह युक्ति चरितार्थ होती है कि 'जैसा बोओगे, वैसा काटोगे.'

आतंकवाद को लेकर अमरीका के दोहरे मापदंड हैं. १३ दिसंबर को भारतीय संसद भवन पर पाकिस्तानियों द्वारा हमले के बाद पूरे सबूत मुहैय्या करने के बावजूद भी अमरीका भारत को संयम बरतने की सलाह दे रहा है. क्योंकि यदि भारत-पाक युद्ध होता है तो अमरीका के हितों को नुकसान पहुंचता है. यह भी विडंबना है कि आज देश पर जब युद्ध के बादल मंडरा रहे हैं, ऐसे कठिन समय में भी विरोधी दल अपनी रोटियां सेंकने में लगे हैं. कोई अब यह नहीं पूछता कि आज अगर महज़ पाकिस्तान के पास न्यूक्लीय क्षमता होती और भारत ने १९९८ में ही इस दिशा में कदम नहीं उठाये होते तो क्या स्थिति होती ? हम बिना लड़े ही युद्ध हार गये होते !

अरविंद

कहानी

बीच का रास्ता

पंकज कुमार

छोटकी सबेरे से ही परेशान थी. चार घंटा पहले ही धनेसरा को खबर भेजी थी परंतु अभी तक नहीं आया. कभी-कभी उसे लगता कि वह किसी ज़रूरी काम में फंस गया होगा. छोटकी को गांव में आये हुए बाईस दिन हो गये थे. पर अभी तक, उसको लिवा जाने के लिए कोई नहीं आया था. इसीलिए उसने धनेसरा को संवाद भिजवा दिया कि टाईम मिलने पर वह आ जाये. इसी परेशानी में वह चौखट के पास बैठी हुई धनेसरा का पेरा जोह रही थी.

तभी धनेसरा आता हुआ दिखाई दिया. उसके आते ही छोटकी ने कहा कि सबेरे से वह उसका इंतजार कर रही है.

'काहे...ला? कउनों काम-धाम बाटे का? रोहनी करत रहनी ह...सोंचनी.....खतमाइए के जाई.' गमछी से मुंह पोछते हुए धनेसरा ने कहा.

'देखऽ..न हो...अभी तक रांची से कोई आएल ना...लागऽ..ता कि कुछ हो उ त ना गएलऽ...?'

यह सुनकर धनेसरा चिहुंक पड़ा. उसने कहा कि बइठल-बइठल निमन-बाउर सोचने की ज़रूरत नहीं. नौकरी-चाकरी वाला 'आमदी' हैं. कोई काम पड़ गया होगा. अगर कोई दिक्कत है तो उसे बोले ज्यादा ज़रूरी होगा तो वह जाकर छोटकी चाची को रांची छोड़ आयेगा. इसी बात पर छोटकी ने कहा कि दो-तीन दिन और देख लेती है. अगर कोई नहीं आया तो फिर धनेसरा उसको 'भगवान बाजार' स्टेशन से 'मौर्य' पर चढ़ा दे, फिर उसको रांची तक जाने में कोई दिक्कत नहीं होगी.

धनेसरा चिरांज गांव का रहने वाला था. बाप ने मरते समय उसके लिए जायदाद के नाम पर एक झोपड़ी और दो कट्ठा खेत छोड़ा था. परंतु धनेसरा का दिल बड़ा चिकन था. वह किसी के लिए कुछ भी कर देता था. गांव के कुछ लोगों ने उसको अपना खेत 'बंटइया' दे दिया था. दरोगाजी का खेत, अशर्फ़ी का खेत, भगतराम का खेत, ठाकुरजी का खेत - सभी वही बोता-काटता और बखरा लगा कर दे देता. समूचे जवार में धनेसरा जैसा आदमी दूसरा कोई नहीं है. हर कारज-करम में वह दिन भर खटता था. शादी हो या श्राद्ध, हर घर में धनेसरा की खोज होती थी. परसाल परवतिया के बिआह में वह रात भर बसंतिया के सेवा में लगा रहा. मंड़वा हो या जनमासा, हर ज़गह पाहुन की खातिरदारी में लगा था. उसको लगता कि गांव-जवार की इज्जत उसकी अपनी इज्जत है. कुछ निमन-बाउर हो गया तो गांव के नाम पर बाहर के लोग थूकेंगे.

धनेसरा का घर गांव के सीवान पर पड़ता है. पांच साल पहले यह घर पूरे गांव के बीच में था. गांव भी कितना अच्छा था - पूरब में अहीर टोला और पश्चिम में राजपूत टोला. उसे खूब याद है कि कैसे राजपूत ओर अहीर दोनों मिलकर रहते थे. हर कार्यक्रम एक साथ करते थे. साथ-साथ भारत माता की मूर्ति बैठाते थे, साथ ही पूजा करते और एक साथ मिलकर मसान के लिए जाते थे. होली, दिवाली, छठ - हर पर्व में दोनों टोले के लोग मिलकर कीर्तन और अठजाम गाते थे. किसी की मजाल नहीं कि गांव की तरफ आंख उठा के देख ले. एक बार गंगा पार के कुछ लोगों ने अशर्फी यादव को घेर लिया था. इस बात पर पूरा राजपूत टोला और अहीर टोला एक साथ गंगा किनारे चले गये. फिर उसके बाद किसी का साहस नहीं हुआ कि गांव के किसी आदमी को धमका दे. लेकिन जबसे 'जतियौरा' राजनीति गांव में आयी दोनों जात वाले अलग-अलग हो गये. धनेसरा को यह बात आज तक समझ में नहीं आयी कि पटना में अहीर की सरकार बने या राजपूत की - इस पर गांव के लोगों को लड़ने की क्या ज़रूरत? जो आदमी गांव की भलाई करता है उसको जाकर वोट दे दो, बात ख़तम. पर यह चीज़ लोगों की समझ में नहीं आती. पिछले चुनाव में अहीर और राजपूत में ठन गयी थी. पंचानन राय का बड़का बेटा सबको कह रहा था कि बिनेसरी यादव को वोट दो. दूसरी तरफ राजपूत टोला के कुछ लड़के रामप्रताप सिंह को वोट देने के लिए कह रहे थे. बस इसी बात पर दोनों में लड़ाई हो गयी. एक साथ बैठकर ताश खेलने वाले लड़के एक-दूसरे पर भाला-बरछी ताने हुए थे. भला हो पुलिस का जो समय पर आकर मामला शांत करवा दिया नहीं तो एक दो लाशें गिर ही जातीं. अहीर टोला का मरे, चाहे राजपूत टोला का होता तो गांव का ही. लेकिन यह बात उन बच्चों के पल्ले नहीं पड़ रही थी. बिनेसरी यादव और रामप्रताप सिंह दोनों में से कोई भी आज तक इस गांव को देखने नहीं आये पर इन दोनों के बयार ने गांव में बंटवारे की लकीर खींच दी. पूरब के अहीर पश्चिम में नहीं जाते और पश्चिम के राजपूत पूरब में. दोनों गांव में अलग-अलग व्यवस्था

हो गयी. परंतु धनेसरा का घर गांव के बीच में था. उसने साफ-साफ बोल दिया था कि मुखिया के चुनाव में न इधर वोट देगा न उधर. वह दोनों तरफ जाता है. ठाकुरजी और दरोगा राय दोनों का खेत बोता है. दोनों तरफ भारतमाता की पूजा होती है ओर धनेसरा जाता है, परंतु दो पूजा देखकर वह मन मसोसकर रह जाता है.

ठाकुर खानदान से धनेसरा बहुत दिनों पहले ही जुड़ गया था. बचपन में ही ठाकुर के घर आता था और छोट-मोट काम कर देता था. इससे ठाकुर साहब ने अपना पूरा खेत उसको 'बंटइया' दे दिया. इसको वह खूब जतन से जोतता, पटवन करता और खाद देकर बोने जुकुर बनाता. तब जाकर वह निमन बीज खेत में डालता. धनेसरा का बोअल खेत दूर से ही पहचान में आ जाता. समूचे 'बरगामा' में किसी का भी खेत इसके खेत से टक्कर नहीं ले सकता था. एकदम लहलह करता था उसका खेत.

ठाकुर साहब के मरने के बाद उनके बेटों में मतभेद होने लगा. दोनों ही पढ़े-लिखे थे. परंतु घरवाली के चक्कर में घर-दुआर सब बंट गया. धनेसरा चाहकर भी यह नहीं समझ पाया कि दो भाई बड़े होने पर अलग क्यों हो जाते हैं? बचपन से दोनों भाई साथ-साथ रहते हैं, एक-दूसरे के सुख-दुख में पीठ पर खड़े रहते हैं, वही दोनों भाई सियान होने पर एक कट्ठा जमीन के लिए नरेट्टी पर चढ़ जाते हैं. कोर्ट-कचहरी सब हो जाता है. उसी गांव के जमुना भगत और हीरा भगत दोनों भाई तीन साल से मुकदमा लड़ रहे हैं - वह भी चार 'अंतरा' 'बरइठा' के लिए. जमीन की कीमत से ज्यादा तो वकील को फीस में दे दिये हैं. परंतु आज तक दोनों भाई में बोलचाल नहीं हुई. जमीन परती है सो अलग. लेकिन धनेसरा ने साफ-साफ बोल दिया कि जब तक वह खेत बोयेगा अपने से आनाज बांटकर देगा. अगर जमीन बांटी गयी तो वह खेत छोड़ देगा. इस बात पर दोनों भाई मान गये. छोटका ठाकुर अपने परिवार के साथ रांची में रहते थे. कभी-कभी वे और छोटकी खेती-बाड़ी देखने आ जाते थे. घर लीप-पोतकर धनेसरा को कुछ समझा-बुझाकर फिर चार-पांच महीना के लिए चले जाते थे.

परसाल धनेसरा बहुत दिक्कत में पड़ गया था. छोटका ठाकुर रांची से खेती-बाड़ी देखने आये थे. खोप से गेहूं निकालकर बेचने लगे तो उसमें तीन बोरा गेहूं कम था. इस बारे में वे धनेसरा से पूछ-ताछ करने लगे. बड़ी मुश्किल से धनेसरा बताया कि बड़की चाची गेहूं निकालकर बेच दी हैं. इसी बात पर दोनों भाई में खूब झगड़ा हुआ. सब हो गया था - बस हाथापाई नहीं हुई थी. धनेसरा वहीं खड़ा टुकुर-टुकुर देख रहा था. उसका दिमाग ही काम करना बंद कर दिया. उसको समझ में नहीं आ रहा था कि किसकी तरफ से बोले. फिर उसको लगता कि लड़ाई में 'जन-बनिहार' को नहीं बोलना चाहिए. आस-पास के दस बारह लोग भी जुट गये. दोनों को झगड़ते देखकर उनमें कानाफूसी भी हो रही थी. तब धनेसरा से रहा नहीं गया ओर बोल पड़ा - 'पढ़ल-लिखलऽ आमदी हो के अइसे लड़तानी.. घर के बात घर में नू रहे के चाहीं.. टोला मोहल्ला के लोग देखी त थपड़ी बजाई.. इ ठीक ना नू होई...'

इस पर बड़का ठाकुर भड़क उठे. कहने लगे कि जन को सोच-समझ कर बोलना चाहिए. पहले तो वह झगड़ा लगवा दिया फिर आकर बीच-बचाव कर रहा है. गांव के लोग भी कहने लगे कि उसे ऐसा नहीं करना चाहिए था. छोट हो के बड़ों के मुंह लगता है. जिस घर में शुरू से आसरा मिला उसी को बिगाड़ रहा है. सोचता है कि दोनों भाई में झगड़ा करवा के अपना फायदा कर लेगा, लेकिन यह सिर्फ धनेसरा को ही पता था कि वह कितना मजबूर हो गया था. बोरा कम होने पर छोटका ठाकुर उसी को डांट रहे थे. कह रहे थे कि उनके नहीं होने से वही तीन बोरा गेहूं निकालकर बेच दिया. धनेसरा को लगा कि बचपन से आज तक जिस ईमान को सहेजकर रखा है वह अब ख़तम हो जायेगा. उसी के सामने बड़की चाची खोप से गेहूं निकालकर रामखेलावन महतो को बेची है. वह तो मना भी किया था पर मानी ही नहीं. कहा कि उसके घर की बात है, अगर खुद चोरी किया होता तो ठीक था, दो-चार जूता मार भी देते तो कोई दुख नहीं होता. मगर चोरी कोई करे ओर इल्ज़ाम उस पर लगे तो वह चुप कैसे रहता. लेकिन गांव को इस बात का पता कहां था. धनेसरा वहां से उठा और अपने घर चला आया. यह बात छोटका चाचा को बताने के लिए उसकी मेहरारू ने भी मना किया था. कह रही थी कि बोलने से उन लोगों के घर में झगड़ा हो जायेगा. उन लोगों का कुछ नहीं होगा. ज्यादा से ज्यादा चार दिन बोलचाल बंद रहेगा फिर बतकही शुरू हो जायेगी. लेकिन इस सबमें वह पिस जायेगा. पर वह माना नहीं.

अंजोरिया रात में धनेसरा दुआरी पर लेटा रहा. उसकी आंखों के सामने दोनों ठाकुरों का रौद्र रूप घूम रहा था. सोच रहा था कि उनके घर नहीं जायेगा. उनका खेत भी छोड़ देगा. बिना मतलब लोगों के बीच बदनाम हो गया. वह कल सबेरे जाकर दोनों ठाकुरों को बोल देगा कि खेत किसी और को दे दें. परंतु... गांव के लोगों का मुंह कैसे बंद करेगा. यह उसकी समझ में नहीं आ रहा था. लोग तो यही समझ रहे हैं कि धनेसरा ने ही दोनों भाइयों में झगड़ा लगवा दिया. ज़िंदगी भर जिस विश्वास को बनाये रखा वही टूटने लगा. मन ही मन उसने मनता मानी कि अगर दोनों ठाकुरों में राय-बात हो जायेगी तो वह 'मईया स्थान' में ग्यारह रुपये का प्रसाद चढ़ायेगा. यही सोचते उसकी आंख लग गयी.

पौ फटते ही धनेसरा ठाकुर घर गया. देखा कि दोनों भाई अलग-अलग बैठे हैं. उनमें कोई बातचीत नहीं हो रही थी. चुपचाप वह ओसारा पारकर अंदर चला गया. बड़की चाची चूल्हा लीप रही थी और छोटकी चाची इनार से पानी भर रही थी. हर तरफ

मनहूस मायूसी थी. उसने मन ही मन तीन बोरा गेहूं का दाम जोड़ा और अपनी कमर से तीन सौ रुपये निकाले. सीधे जाकर छोटका चाचा को रुपये बढ़ा दिये और कहा - 'चाचा! हमरऽ ग़लती माफऽऽ. हमही गेहूं निकाल के बेच देनी हऽ. हमर बड़का बेमार रहे. हिसाब करके उ पइसा ले लऽऽ. बड़की चाची वाला बात झूठ रहे...' यह सुनकर दोनों भाई चकित रह गये. धनेसरा बोलने लगा. 'हमरा के ई बात ताटे के पकड़ता कि तू अपने में लड़ऽ तारऽ. अगर इहे बात रही त आज के बाद ई घर में ना आयेम. हम सोचले रहनी कि तीन बोरा तू लोग खातिर छोट-मोट चीज़ वा.. हमरा माफ कर दऽ.'

यह कहकर धनेसरा रोने लगा. दोनों भाई एक साथ उठे और समझाने लगे. छोटका ठाकुर कह रहे थे कि यह बात वह पहले ही बोल देता तो बात ही नहीं बिगड़ती. ज़रूरत पड़ने पर दो बोरा गेहूं बेच दिया तो क्या हुआ. सबसे बड़ी बात है कि उसने अपनी ग़लती मान ली. बड़की चाची भी बाहर आ गयी. परंतु धनेसरा से आंखें मिलाने का साहस नहीं कर पा रही थीं. धनेसरा को यही लगता कि सिर्फ तीन सौ रुपये गंवा कर उसने मालिक के घर को टूटने से बचा लिया.

इस साल भी बरसात ख़तम होने के बाद छोटकी आयी थी. छोटका ठाकुर उसको गांव पहुंचाकर रांची चले गये थे. कह गये थे कि दस-बारह रोज के बाद आकर ले जायेंगे. छोटकी ने इतने दिनों में ही सारा काम-धाम निपटा लिया. बाईस दिन हो गये थे पर अभी तक वे लेने नहीं आये थे. रह-रहकर उसका मन अपशकुन से घिर जाता था. अंदर वह चिंता से मरे जा रही थी. न ठीक से खाती-पीती, न ही कुछ करती-धरती. बस चौखट के पास बैठी-बैठी उनके आने का आसरा देखती रहती. अंत में उसने धनेसरा को टीसन तक छोड़ देने के लिए कहा.

इसके बाद धनेसरा सोच में पड़ गया. उसका पंपिंग सेट खराब हो गया था. इसलिए उसको लेकर उसे पटना जाना है. इधर छोटकी को पहुंचाना पड़ सकता है. दोनों काम एक साथ करना असंभव है. बेसी से बेसी यही कर सकता है कि छोटकी चाची को पहले रांची पहुंचा देगा तब पटना जायेगा. लेकिन इसमें बहुत देर हो जायेगी. खेत सब सूख जायेगा. पटवन भी ज़रूरी है. सोहनी का काम भी चल रहा है. अगर पूरा नहीं किया गया तो ठेहुना भर घास-पात खेत में हो जायेगा. वह कैसे जा सकता है? लेकिन नहीं! इन सबसे ज़रूरी है छोटकी चाची को रांची पहुंचाना. दो दिन का रास्ता है. जमाना बहुत ख़राब चल रहा है. अकेले जनानी जात को इतनी दूर जाने में क्या परेशानी हो सकती है कहा नहीं जा सकता. अगर कुछ निमन-बाउर हो गया तो छोटका चाचा को क्या ज़बाब देगा? गांव की इज्जत पर आंच आ जायेगी. काम दो-तीन दिन बाद भी होता रहेगा लेकिन चाची के साथ जाना बहुत ज़रूरी है.

ग़ज़ल

✍ आकाश अशेष

करवटें हम बदलते रहे रात भर,
कोई पहलू में सोया किया बेख़बर ।
दर्द से दोस्ती, दुश्मनी यूं चली,
आंसुओं ने उड़ायी हंसी उम्र भर ।
हारती ही रही रोशनी इस तरह,
सो गये लोग जलते दिये छोड़कर ।
ज़िंदगी बेतरह बेख़बरी रह गयी,
जान होती रही यूं जवानी बदर ।
हम सहमते मिटाते रहे सलवटें,
कोई आयेगा शायद यही सोचकर ।
कैसी बारिश हुई सावनी, फागुनी,
फूल खिलते रहे रात दिन, साल भर ।
बोलो किस बात से ख़ुद से नाराज़गी,
मांग सिंदूरी लेकिन कुंवारी नज़र ।
गांव लूटा उसी ने जो पहरे पे था,
लोग सोये रहे फलसफे ओढ़ कर ।

७१, अक्षर-धाम, बसई,
टूंडला (फिरोज़ाबाद) २८३२०४

इसी तरह दिवाली आ गयी. पर रांची से कोई नहीं आया. धनेसरा ने भी रांची जाने का मन बना लिया था. छोटकी ने भी सोच लिया था कि आज कोई नहीं आता तो वह कल भिनसरे धनेसरा के साथ निकल जायेगी. अब मन भी उकता गया था. आशंका से उसका जी घबड़ा रहा था. इसीलिए उसने दिवाली होने के बावजूद खाना नहीं बनाया, घर नहीं लीपा, चुपचाप ओसारे में बैठी रही. सबेरे से ही कउआ आंगन में कांव-कांव कर रहा था. उसकी बांयी आंख भी फड़क रही थी. इस सबसे उसको लगता कि कोई ज़रूर आयेगा पर उसका मन ही नहीं मानता. दिन भी ख़तम होने को था. तभी उसका बड़का बेटा आता हुआ दिखाई दिया. आने पर उसने बताया कि पापा बीमार हैं और उनका चलना-फिरना बंद है. छोटकी का मन शांत हुआ. दिया-बाती की व्यवस्था करने लगी. उसका बेटा ढीला कपड़ा पहन कर खेत पर चला गया. वहां धनेसरा और उसकी मेहरारू दोनों सोहनी कर रहे थे. बउआ को देखते ही धनेसरा चहक उठा- 'आ..गइलऽऽ. चलऽऽ ठीक भइल. बड़ा भारी बोझा उतर गएल. हमर त दिमागे काम ना करत रहे. चाची कहत रहली कि जाएम, त उनका अकेले कइसे छोड़ती.. जनानी जात... आ दू दिन का रास्ता.. एने खेत में ढेर काम पड़ल बा...'

'.....'

'अच्छा! कब जाय के बा.'

बउआ ने कहा कि वे लोग कल जायेंगे.

सुबह-सुबह धनेसरा आ गया. तुरंत वह गेहूं का बोरा, चावल का बोरा दर्रा, केला, सब सेटकर बांधने लगा. इसी बीच बउआ और छोटकी भी तैयार हो गये. सारा सामान बांधकर धनेसरा ने रिक्सा बुलाया. उसे लदवाकर रोड तक लिवा लाया. वहां उसने टैंपू रिजर्व किया, सीधे भगवान बाजार स्टेशन के लिए. उस पर सामान रख दिया फिर छोटकी और बउआ बैठ गये. तब वह दोनों हाथ जोड़कर छोटकी से कहा- 'चाची... प्रणाम.. कोई ग़लती हो ग़ईल होखी त माफ करिहऽऽ हमनी के देहाती हई स... 'फिर बउआ की तरफ मुखातिब होकर कहा-

'प्रणाम! बड़का बउआ... फेर अइहऽऽ.'

इसके बाद छोटकी पर्स से पचास का नोट निकालकर धनेसरा को देने लगी. वह नहीं ले रहा था, लेकिन जोर देने पर ले लिया. टैंपू वाला गाड़ी स्टार्ट कर आगे बढ़ा दिया. धनेसरा हाथ जोड़े खड़े-खड़े दूर जाते टैंपू को देख रहा था...

द्वारा श्री सत्यनारायण प्रसाद,
इंदिरा नगर, सर्कुलर रोड, बी. देवघर - ८१४११२ (झारखंड)

थोड़ा सा सत्तू खा लेंगे

✍ हरीश दुबे

भूख पे यूं काबू पा लेंगे,
थोड़ा सा सत्तू खा लेंगे.

बड़े-बड़े दिन हैं गर्मी के,
तुलसी के दोहे गा लेंगे.

छप्पर को आषाढ़ से पहले,
किसी हाल में फिर छा लेंगे.

तनखा में बरकत आये तो,
आंगन में गैया पालेंगे.

तन्हा रस्ता नहीं कटा तो,
गीतों को लय में ढालेंगे.

याद करेंगे बीते मौसम,
दर्द अग़र ज्यादा सालेंगे.

स्टेट बैंक के पास,
महेश्वर, जिला - खरगोन (म. प्र.)

ग़ज़लें

✍ सत्यप्रकाश शर्मा

(१)

तस्वीर का रुख़ एक नहीं, दूसरा भी है ।
ग़ैरात जो देता है वही लूटता भी है ।।

ईमान को अब ले के किधर जाइएगा आप ।
बेकार है ये चीज़, कोई पूछता भी है ।।

वैसे तो ज़माने के बहुत तीर खाये हैं ।
पर इनमें कोई तीर है जो फूल सा भी है ।।

क्या मानेगी नस्लें जो ये जंगल नहीं बचे ।
तस्वीर का ये मोर कहीं नाचता भी है ।।

इस दिल ने भी फ़ितरत किसी बच्चे सी पायी है ।
पहले जिसे खो देता है, फिर ढूंढ़ता भी है ।।

(२)

मज़े की बात कि अपना बदन किसी का नहीं ।
सराय-फ़ानी से जाने का मन किसी का नहीं ।।

विरासतों में ये तरमीम हो गयी कैसे ।
चमन तो सबका है, दार-ओ-रसन किसी का नहीं ।।

लुभाने आता है लम्हों की शक़्ल में वरना ।
हुआ ये वक़्त कभी, आदतन किसी का नहीं ।।

हलफ़ उठा के ये कहता हूं, दर्द मेरे हैं ।
नज़र कोई न लगाये, ये धन किसी का नहीं ।।

तमाम यादों के पैकर हैं इर्द-गिर्द मेरे ।
मेरी पहुंच में मगर तन-बदन किसी का नहीं ।।

१०६९, डब्ल्यू-२ बसंत विहार, कानपुर-२०८ ०२१

कहानी

कर्फ्यू

नरेंद्रकौर छाबड़ा

पूरा शहर परसों से कर्फ्यू के आगोश में समाया है. हर ओर सन्नाटा, दहशत, दमघोंटू चुप्पी छायी हुई है. दोपहर के सूने, गहन सन्नाटे में कोई कुत्ता भौंकने पर रात्रि के तीसरे चौथे पहर का भ्रम हो जाता है. सभी लोग घरों में कैद, अजीब सी छटपटाहट महसूस कर रहे हैं विशेषकर पुरुष वर्ग और बच्चे, पता नहीं कब उठेगा कर्फ्यू?

"पापा, यह कर्फ्यू क्यों लगाया जाता है? इसका अर्थ क्या होता है?" दस वर्षीय सोनू मुझसे पूछ रहा है.

वक्त काटने के लिए पत्रिका पढ़ रहा मैं, क्षणभर रुक उसे समझाने लगता हूं - "जब किसी शहर, कस्बे की स्थिति किसी कारणवश नियंत्रण से बाहर हो जाये तो उसे सेना व पुलिस के हाथ में सौंप दिया जाता है यही कर्फ्यू होता है. इस दौरान सब बंद रहता है केवल पुलिस ही सड़कों पर गश्त लगाती है और स्थिति पर नियंत्रण रखती है. कोई व्यक्ति भी घर से बाहर नहीं आ सकता."

उसका अगला प्रश्न था- "लेकिन शहर की स्थिति बिगड़ती क्यों है?"

"कुछ लोग दंगे फसाद करते हैं तभी स्थिति बिगड़ती है." मैंने संक्षिप्त सा उत्तर दिया.

"पर वे दंगे फसाद क्यों करते हैं? अपना-अपना काम क्यों नहीं करते?"

सोनू के प्रश्न का मेरे पास उत्तर नहीं था फिर भी उसकी जिज्ञासा शांत करने के लिए मैंने कहा - "कुछ लोगों को अमन शांति पसंद नहीं होती. उनके शैतान दिमाग में तोड़-फोड़, खून-ख़राबा, मारपीट जैसी हरकतें भरी होती हैं, मौका देखकर वे ही ऐसी स्थिति पैदा करते हैं."

"लेकिन इससे तो नुकसान ही होता है न? कोई फायदा तो नहीं न?" उसकी बालसुलभ जिज्ञासा चरम सीमा पर थी.

"नहीं."

"फिर लोग नुकसान वाले कार्य क्यों करते हैं? क्या उन्हें पता नहीं होता इसमें कोई लाभ नहीं?" सोनू के तर्कपूर्ण प्रश्नों के उत्तर देना मेरे लिए संभव नहीं था. टालने की गरज से मैंने कहा - "बेटा, इधर देखो इस पत्रिका में कितनी अच्छी प्रश्नोत्तरी आयी है."

वह पत्रिका देखने में रम गया तो मैंने राहत की सांस ली. पत्नी रसोई में थी मैंने वहीं से आवाज लगायी - "ज़रा एक कप चाय तो बना दो सिर में भारीपन सा महसूस हो रहा है." बिना दूध की काली चाय का कप थमाते पत्नी भुनभुनाई, "पता नहीं बगैर काम के ही तुम्हारा सिर भारी क्यों हो रहा है. महीने के आखरी दिन हैं सारे डिब्बे खाली हो रहे हैं तुम चाय पर चाय..."

उसका खीझना भी ज़ायज है. बच्चे सारा दिन घर रहने पर धींगामस्ती, मारपीट, चीख चिल्लाहट मचाते हैं. कभी एक शिकायत लेकर आता है तो कभी दूसरा. ढाई कमरे के घर को बेतरतीब बनाने में भी उन्हें समय नहीं लगता. पत्नी एक कमरा साफ कर दूसरे में जाती है तो उसके वापस लौटने तक वह कमरा पूर्वरूप में होता है. वह कलपती, कहती है - "नालायकों, तुम तो स्कूल में ही कैद रहने के लायक हो. घर को कबाड़खाना बना रखा है पता नहीं कब अक्ल आयेगी." उस पर थोड़ी-थोड़ी देर में मेरी फरमाइशें - कभी पानी की, कभी नाश्ते की...

अचानक गोली चलने की आवाज आयी तो बच्चे सहमकर मेरे इर्द-गिर्द बैठ गये. पत्नी भी वहीं आकर बैठ गयी.

"पापा, ये गोली किसने चलायी होगी?" आठ वर्षीय टिंकू सहमते हुए पूछ रहा था.

"पुलिस ने."

"किसको मारा होगा?"

"देखो बेटा, कई बार डराने के लिए पुलिस हवा में गोली चलाती है, किसी को मारती नहीं." मैंने समझाया.

"पर कर्फ्यू में तो सब घर के अंदर रहते हैं सड़क पर तो कोई आता नहीं, फिर किसको डराने के लिए गोली चलाते हैं?" यह सोनू था.

"कुछ लोग कर्फ्यू के दौरान भी नियम को तोड़ते हुए सड़कों पर आ तोड़फोड़, मारपीट करते हैं तो पुलिस को गोली चलानी पड़ती है."

बच्चे बिना पलकें झपकाये हैरत से सुन रहे थे. शायद उनके होश संभालने के बाद अपने शहर में कर्फ्यू का यह पहला अवसर था.

"उन्हें गोली से डर नहीं लगता?"

सहमे हुए टिंकू ने पूछा तो मैंने बातचीत का रुख़ पलटते हुए कहा - "बेटा, जाओ जरा एक गिलास पानी तो ले आओ मेरे लिए." बेमन से वह उठकर चला गया. मैं पत्नी से दूसरे विषय पर बातचीत करने लगा ताकि दोबारा सोनू या टिंकू उसी विषय को न ले बैठें.

शायद रात का तीसरा पहर था. हल्के से शोरगुल की आवाज़ आयी. साथ ही फायर ब्रिगेड की घंटियों की तीखी टनटनाहट से मैं हड़बड़ाकर उठ बैठा. पत्नी भी उठ गयी थी. तेजी से खिड़की की ओर बढ़ा तो देखा कुछ दूरी पर आग की लपटें मानो आकाश को निगलना चाह रही थीं. रात की नीरवता के कारण लोगों का हल्का सा शोरगुल भी सुनाई पड़ रहा था. घबराहट व भय से मैं एक शब्द भी न बोल पाया. पत्नी ही बोली - "उस क्षेत्र में तो लकड़ी की दुकानें हैं ना. शायद वहीं कहीं आग लगायी गयी है. लेकिन कर्फ्यू में भी इतनी हिम्मत है लोगों में? किसी को कोई डर ही नहीं."

"गुंडों, उचक्कों को काहे का डर ? किसका डर ?"

मैं क्रोध से उत्तेजित हो बोलता गया.. "उनकी पीठ पर तो अवसरवादी, सत्तालोलुप नेताओं का हाथ होता है. दंगे फसाद की योजना भी ये लोग ही मिलकर बनाते हैं. अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए और होम होना पड़ता है निरपराध लोगों को..."

पुलिस की गाड़ियां सड़कों पर दौड़ने लगी थीं ताकि लोग बाहर न आ जायें. दो-बार खिड़की में से देखा, कभी लपटें अधिक भयानक हो जातीं, कभी कुछ कम हो जातीं. सोने की कोशिश तो बेकार ही थी. इतने तनाव में नींद किसे आनी थी. पता नहीं कितने निरपराध लोगों की रोजी-रोटी स्वाहा हो गयी होगी इन लपटों में.

सबेरे अख़बार वाले ने घंटी बजायी तो लपककर दरवाजे पर पहुंचा. शुक्र है कर्फ्यू पास लेकर ये लोग अख़बार तो डाल जाते हैं. ख़बरों की जानकारी तो प्राप्त हो जाती है. पहले पृष्ठ पर ही बड़े अक्षरों में ख़बर थी - 'मुल्ला हुसैन के लकड़ी के पीठे में कुछ शरारती तत्वों ने देर रात को आग लगा दी. उसके साथ की चार और दुकानें, जिनके मालिक क्रमशः शामलाल, मदनलाल, असगरअली तथा इकबालअली हैं भी पूरी तरह भस्म हो गयी हैं. कुछ पान व चाय की टपरियां जो इन दुकानों के इर्द-गिर्द थीं वे भी नष्ट हो गयी हैं. भागते हुए अपराधियों को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया है. इस अग्निकांड में करोड़ों के नुकसान का अनुमान है.'

ख़बर पढ़ मन वितृष्णा से भर उठा. आख़िर कब इन शर्मनाक, वीभत्स हरकतों को आम आदमी लाचारी से देखता व सहन करता रहेगा? क्या हजारों-लाखों कुर्बानियों के बाद प्राप्त हुई आज़ादी की यही उपलब्धि है?

"सुनते हो, कर्फ्यू में कुछ ढील की संभावना है क्या?" पत्नी ने मुझे अख़बार में सिर गड़ाये देखते हुए कहा. "तुम भी कैसी बातें करती हो. अभी रात को इतना भीषण अग्निकांड हुआ है. कर्फ्यू में ढील कैसे दी जायेगी?" मैंने अपना ज्ञान बघारा.

"बड़ी मुश्किल हो जायेगी. सब्जियों की ज़गह दालों से तो काम चल रहा है. पिछले तीन दिनों से, पर आटा भी ख़त्म होने वाला है..."

२ अक्तूबर १९५०, झूमरी तलैया, बी.एस-सी.

लेखन : *विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लगभग ५०० रचनाएं प्रकाशित, जिनमें ६० से ऊपर कहानियां हैं, शेष लेख, लघुकथाएं, साक्षात्कार हैं. स्थानीय 'लोकमत समाचार' अख़बार में ७ वर्षों तक फीचर संपादन का कार्य. ५ वर्षों तक इस अख़बार में साप्ताहिक स्तंभ 'बातचीत' प्रकाशित.*

प्रकाशन : *तीन संग्रह प्रकाशित - 'मेरी प्रतिनिधि कहानियां', 'मेरी चंद लघुकथाएं,' 'चुनिंदा कहानियां'.*

पुरस्कार : *प्रथम कहानी संग्रह पर' मानव संसाधन विभाग का हिंदीतर भाषी पुरस्कार राष्ट्रपति शंकरदयाल शर्मा द्वारा प्राप्त. स्थानीय 'देवगिरि' समाचार-पत्र द्वारा उत्कृष्ट फीचर लेखन पुरस्कार. स्वदेश (इंदौर) कहानी प्रतियोगिता में १९९५ तथा १९९७ में प्रथम पुरस्कार. कुछ लघुकथाएं भी पुरस्कृत.*

अन्य : *कुछ कहानियों का पंजाबी, मराठी, गुजराती में अनुवाद. आकाशवाणी से कहानियों का नियमित प्रसारण. दूरदर्शन कार्यक्रमों में भी शामिल. वर्ष १९९६ में स्थानीय आर्ट गैलरी में चित्रों (पेंटिंग) की प्रदर्शनी आयोजित.*

संप्रति : *लेखन तथा स्वतंत्र पत्रकारिता.*

पत्नी ने परेशान होते हुए कहा.

"कितने दिनों का है अभी?" मैंने पूछा.

"बस आज का दिन चल जायेगा. मुझे थोड़े ही पता था कि कर्फ्यू लगने वाला है, नहीं तो एक दो दिन पहले और डिब्बा भर गेहूं पिसवा लेती."

मैं कुछ न कह सका, क्योंकि सचमुच ही इसमें पत्नी का तो कोई दोष था नहीं केवल इतना ही अपनी ओर से कहा - "चावल तो होंगे न, उनसे ही काम चलाओ तब तक." हालांकि मैं स्वयं जानता था कि महीने का अंत होने के कारण सभी राशन के डिब्बे खाली होने वाले होंगे. हम मध्यमवर्गीय अति साधारण लोगों के लिए महीने भर से अधिक खाद्य पदार्थों का संग्रह संभव ही नहीं हो पाता. हर माह खींच तानकर बनायी हुई मामूली सी रकम कभी बीमारी तो कभी मेहमान-नवाजी या त्योहारों के लेन देन में फुंक जाती है. उस पर सुरसा के मुंह की तरह बढ़ती महंगाई रही कसर पूरी कर देती है.

इत्तफाक से अगले दिन कर्फ्यू में दो घंटे की ढील दी गयी ताकि लोग ज़रूरत का सामान खरीद सकें. पत्नी ने फौरन ज़रूरी सामान की सूची के साथ दस किलो गेहूं भी डिब्बे में डाल मुझे थमा दिये. तनख्वाह तो कर्फ्यू उठने के बाद ही मिलनी थी सो आड़े वक्त के लिए रखे पैसों को ही निकालना पड़ा. मोहल्ले में स्थित चक्की पर मैंने डिब्बा रखा तो पता लगा करीब पंद्रह लोग पहले ही नंबर लगा चुके हैं. बड़ी कोफ़्त हुई. तभी चक्की वाला बोला - "घंटे भर में गेहूं पिस जायेगा तब तक आप दूसरे काम निबटा आयें." मैंने तत्क्षण बाजार का रुख़ किया. दो चार दिनों के लिए तेल, दालें, सब्जी वगैरह लेने में करीब एक घंटा लग गया. हर दुकान पर ग्राहकों की भीड़ जैसे टूट पड़ी थी. हर कोई जल्दी सामान ले शीघ्र घर पहुंचना चाहता था. दुकानदार भी अफरा-तफरी से सामान बांधते हुए बीच-बीच में बाहर की ओर भी निगाहों से चौकसी कर रहा था कहीं कोई गुंडातत्व न आ धमके.

सामान लेकर जब मैं चक्की पर पहुंचा तो पता लगा घंटे भर से बिजली ही गुल थी. केवल दो तीन लोगों के गेहूं पिसे थे. मैं काफी परेशान हो गया, चक्की वाले से पूछा - "आपके पास आटा होगा न मुझे पांच किलो दे दो."

"नहीं साब, आटा तो ख़त्म हो गया. आपके आने से पहले जिनके गेहूं नहीं पिस पाये वे लोग ले गये."

इधर पुलिस की गाड़ियां पुनः कर्फ्यू लगने की घोषणा करने लगी थीं. दौड़ते-भागते सभी अपने अपने घरों की राह पकड़ रहे थे. निराशा से डिब्बा उठा मैं भी तेज कदमों से घर में दाखिल हुआ. पत्नी सारा वृतांत सुन मन मसोसकर रह गयी.

जिस मुल्ला हुसैन की दुकान को आग लगायी गयी थी उसका भाई हमारा पड़ोसी था. हमारे घर एकदम सटे हुए थे, फिर भी हमारे संबंध दुआसलाम तक ही सीमित थे. वैसे उनकी ओर से तो दोस्ती बढ़ाने की शुरूआत हुई थी लेकिन मेरी पत्नी ने ही उसे सीमित दायरे में बांध दिया था. अपने संस्कारों के कारण उसे किसी मुस्लिम के घर चाय पानी, खाने आदि से परहेज़ था. कभी मैं उसके संकुचित दृष्टिकोण का मज़ाक उड़ाता तो वह ख़फा हो कह उठती - "आपको कुछ पता भी है इनका रहन-सहन कितना अजीब है. मैंने खुद इनके घर देखा है. एक सदस्य ने पानी पीकर गिलास मटके के ऊपर रख दिया. दूसरा सदस्य भी उसी प्रकार उसी गिलास में पानी पीकर मटके के ऊपर रख चला गया. छिः, जूठा गिलास मटके पर रख दिया तो वह भी तो जूठा हो गया. अब क्या उनके घर चाय पानी पीने का दिल चाहेगा?"

मैं निरुत्तर हो गया. वहमी लोगों के सामने कोई दलील नहीं टिक सकती मैं जानता था. ईद के दिन जब उन लोगों ने मेवों से भरी सिवईयां भेजीं तो पत्नी ने चुपके से राह चलते फकीर के कटोरे में उलट दीं. मुझे काफी बुरा लगा. मैंने कहा - "तुम्हें नहीं खानी थीं तो न खातीं, बच्चों को तो दे सकती थीं. उन लोगों ने इतने प्रेम से, इतने मेवे डालकर भेजीं और तुमने भिखारी को दे दी. अगर उन्हें पता लग गया तो?"

"लगने दो मुझे परवाह नहीं, मैं खाने संबंधी लेन देन के मामले को आगे बढ़ाना नहीं चाहती."

उसके पश्चात भी उनकी ओर से दो चार बार कुछ पकवान, सब्जियां आयीं लेकिन पत्नी ने हर बार भिखारियों में बांट दीं. शायद उन्हें इस बात का पता लग गया, क्योंकि सोनू के साथ खेलते वक्त उनके बेटे कादिर ने कहा- "अब मैं तुम्हारे घर नहीं आऊंगा तुम्हारी मां हमारे भेजे पकवान भिखारियों को बांट देती है न." सोनू खामोशी से उसका चेहरा ताकता रहा. सचमुच ही उस छोटे से बच्चे ने हमारे घर आना छोड़ दिया था. पहले खेलते वक़्त अक्सर ही पानी पीने वह इधर ही आ जाता था परंतु अब तो वह झांकता भी न था. मेरी पत्नी को कोई फ़र्क नहीं पड़ा. वह तो वैसे ही उनसे विशेष संबंध बनाना चाहती ही नहीं थी.

लगभग दो-तीन महीने पहले कादिर ने खेल-खेल में झगड़ते हुए सोनू को धक्का दे दिया था जिससे उसके पैर में मोच आ गयी थी. पत्नी शिकायत करने गयी तो कादिर की मां ने भी काफी खरी-खोटी सुना दी जिससे दोनों में बातचीत लगभग बंद सी हो गयी. बच्चे फिर भी कभी कभार खेल-बोल लेते थे. हां, मेरी या कादिर के पिता की मुलाकात होती तो हम एक दूसरों की कुशलक्षेम अवश्य पूछ लेते थे.

शहर में भड़के सांप्रदायिक दंगों में सरकारी ख़बरों के अनुसार अब तक पंद्रह लोगों की जान जा चुकी थी और लगभग सौ से अधिक दुकानों को बुरी तरह क्षति पहुंचायी गयी थी. चूंकि

हमारे पड़ोसी के भाई मुल्ला हुसैन का भी काफी नुकसान हुआ था. अतः मैंने पत्नी से कहा कि शाम के वक़्त पिछवाड़े के दरवाज़े से उनसे मिलने चलेंगे. उस ओर तो पुलिस का पहरा नहीं है. कम से कम सहानुभूति तो प्रकट कर आयें. आखिर पड़ोसी है. पत्नी ने पहले तो आनाकानी करते हुए इंकार कर दिया पर मेरे ज़ोर देने पर राजी हो गयी.

शाम का धुंधलका होने पर बच्चों को दरवाज़े अच्छी तरह से बंद रखने की हिदायत दे हम पिछवाड़े के दरवाज़े की ओर बढ़े. अभी कुंडी पर हाथ रखने को था कि भीतर से आती आवाज़ों ने रोक दिया, "देखा, इन काफिर लोगों ने कितनी बर्बादी कर दी भाई साहब की. बीमा भी माल के मुकाबले कम का था उसे मिलने में भी तो वक़्त लगेगा. उन्होंने तो कभी हिंदुओं से कोई दुश्मनी नहीं रखी. कितने ही उनके दोस्त हिंदू हैं मगर उन्हीं लोगों ने कैसा दगा दिया."

"मैं तो कहती हूं ये लोग भरोसे के काबिल ही नहीं. हम लोगों की तरक्की ये सहन ही नहीं कर पाते. तभी तो हर साल छः महीने में कहीं न कहीं ज़रूर दंगे करवाते हैं. हर बार हम लोगों का ही जानमाल का अधिक नुकसान होता है."

मेरी पत्नी ताव खाकर बोली - "अब भी सहानुभूति प्रगट करने जाओगे तुम? अब तो अपने कानों से सुन लिया कैसी मनोवृत्ति है इनकी हमारे बारे में, तुम्हें जाना हो तो जाओ मैं तो घर जा रही हूं..." वह वापस पलट गयी. मैं असमंजस की स्थिति में कुछ क्षण खड़ा रहा फिर कुंडी पर हाथ धर ही दिया.

"कौन है?" भीतर से कुछ तेज व तनिक घबराहट भरी आवाज़ आयी.

"मैं हूं आपका पड़ोसी विक्रम." मैंने धीरे से कहा.

आहिस्ता से दरवाज़ा खुला. मुझे देखते ही वे बड़े घबराये से बोले - "क्या बात है? खैरियत तो है?"

"जी हां, दरअसल मुल्लाभाई के नुकसान के बारे में जानकर अफ़सोस हुआ. उसी सिलसिले में आया था..."

"बैठिए." वे औपचारिक हो गये. मैं वहां पंद्रह मिनट बैठा पर इन पंद्रह मिनटों में मैंने महसूस किया जो प्रश्न मैंने पूछे केवल उनका उत्तर ही मिला. उनकी ओर से बातचीत की शुरूआत ही नहीं हुई. उनकी पत्नी ने तो कमरे के प्रवेश द्वार से मुझे देखा तो जितनी देर मैं वहां रहा वह सामने ही नहीं आयी. मुझे बुरा लगा. आया था सहानुभूति जताने और बन गया उपेक्षा व घृणा का शिकार. पत्नी ठीक ही कहती थी इनकी मनोवृत्ति ही बदल गयी है. खैर, उपेक्षित सा मैं वापस लौट आया.

अगले दिन पुनः दो स्थानों पर भयंकर आगजनी, लूटपाट और छुरेबाजी की घटनाएं हुईं तो कर्फ्यू में कोई ढील न देने की घोषणा कर दी गयी. पत्नी परेशान सी बोली - "बच्चे रोटी की मांग कर रहे हैं कब उठेगा यह कर्फ्यू?"

"शुक्र करो तुम्हारे पास चावल तो हैं. जिनके पास कुछ नहीं जो रोज कमाकर, खरीदकर खातें हैं उनका क्या हाल होगा?" मैंने अपना आक्रोश पत्नी पर उतार डाला.

रात को पुनः कुछ आगजनी की घटनाएं घटीं तो हमने अंदाज़ लगाया शायद कल भी कर्फ्यू में ढील नहीं दी जायेगी. अब तो मैं भी परेशान हो गया था. पत्नी ने बताया चावल भी चुकने वाले हैं. अगर और दो दिनों तक कर्फ्यू न हटा तो क्या खायेंगे? जब तक तनख्वाह नहीं मिलती अगले महीने का राशन लाना संभव नहीं. इस बार तो पिछले पांच छः दिनों से मैं और बच्चे भी सारा समय घर ही थे अतः राशन कुछ जल्दी ही चुक गया था. कुछ काम-वाम न होने पर कभी बच्चे कुछ फरमाईश कर उठते, कभी मैं. यह तो सोचा नहीं था स्थिति इतनी बिगड़ जायेगी और कर्फ्यू इतना लंबा खिंच जायेगा. इसी चिंता से रात को नींद ठीक से नहीं आ पायी. सुबह नीम अंधेरे ही उठ बैठा अख़बार के इंतजार में. आजकल सुबह के वक़्त पक्षियों का कलरव भी सुनाई नहीं पड़ता था. शायद शहर की दहशत से वे भी कहीं दूर चले गये थे.

अचानक पिछवाड़े के दरवाज़े की कुंडी खटखटाने की आवाज़ आयी तो क्षण भर के लिए हम घबरा से गये. एक आतंक सा पसर गया, कौन होगा इतनी सवेरे? दोबारा आवाज़ आने पर पत्नी उठी तो मैं उसे रोकता हुआ दरवाज़े तक गया - "कौन है?" "मैं आपकी पड़ोसन कादिर की मां." मैंने पत्नी को इशारे से बुलाया और स्वयं दूर हट गया. पत्नी ने दरवाज़ा खोला. कुछ पूछने से पहले ही कादिर की मां ने छोटा सा कनस्तर पत्नी की ओर बढ़ा दिया- "इसमें आटा है..."

पत्नी हतप्रभ सी उसका मुंह ताकती रह गयी. इसे कैसे पता लगा? "तुम्हारे सोनू ने कल शाम कादिर को बताया था कि तुम्हारे पास आटा नहीं है, चावल भी ख़त्म होने को हैं," उसने स्वयं ही खुलासा कर दिया.

"लेकिन..." पत्नी को सूझ ही नहीं रहा था क्या कहे, शायद वह दुविधा में थी - एक ओर खाली होते राशन के डिब्बे और दूसरी ओर उसी की ओर से मिली सहायता जिसके घर का पानी भी उसे गंवारा नहीं था. पिछले कई महीनों से तो उनसे बातचीत की औपचारिकता भी ख़त्म हो चुकी थी.

"मैं जानती हूं तुम्हें हमारे घर का कुछ भी खाना पसंद नहीं लेकिन इस मजबूरी में, कम से कम बच्चों का ध्यान रखते हुए इसे रख लो....." चाहो तो बेशक वापस लौटा देना. वैसे हम लोग इतने गैर तो नहीं..."

पत्नी किंकर्तव्यविमूढ़ सी उसका चेहरा ताकती रह गयी. इस बार कादिर की मां कुछ तीखे व अधिकारपूर्ण लहज़े में बोली.. "अब रख भी लो, बच्चों को भूखा मारना है क्या? यह कर्फ्यू मरा तो न जाने कब हटेगा...."

पड़ोसन वापस लौट रही थी... और पत्नी के हाथों में कनस्तर थरथरा रहा था... और उसकी आंखों में.....

१८४, सिंधी कालोनी, जालना रोड,
औरंगाबाद - ४३१ ००५ (महाराष्ट्र)

दस का नोट

रजनी कुमार पंड्या

कंडक्टर ने अपना पंच खटखटाया. आंख के इशारे से पूछा 'किधर जाना है?' मोरार ने प्लास्टिक का छोटा सा बैग तैयार ही रखा था. उसमें दो-दो के नोट दिखाई दे रहे थे. गिने हुए ही, पूरे आठ रुपये थे.

'इतने रुपयों में जिधर का मिल सकता हो, काटो टिकट.'

इस इलाके में ऐसे नमूने बहुत मिल जाते हैं. उमरभाई अभ्यस्त था. कुछेक तो ऐसे भी आ जाते जो कहते - 'लीजिए यह लॉटरी का टिकट. टिकट के बदले में बस का टिकट दीजिए. इनाम खुल जायेगा तो ऐसी दो बसों के मालिक हो जाओगे. अभी हंसी आती है, बाद में रोने की नौबत न आ जाये इसलिए आगाह करता हूं कि यह महज लॉटरी का टिकट नहीं है पर रुपयों का बीज है.' ऐसा कहनेवाले का मुंह एक बार उमर ने सूंघ लिया था. बेवडे की बू आ रही थी. उसने पूछा था, क्या बेवडा चढ़ाया है?' उत्तर मिला था - 'तभी तो ऐसी ऊंची बातें मुंह से निकल सकेंगी न.' उमरभाई जानता था कि जिस गांव से मोरार बस में चढ़ा वह गांव भट्टीपरा के नाम से मशहूर था. गांव में चूल्हों से भी अधिक भट्टियों की भरमार थी! 'शर्म नहीं आती है? क्या बेवडे की भट्टी खोल रखी है?' उत्तर - 'पीने को जितनी चाहिए उतनी घर में ही तैयार कर लेना तो स्वावलंबन की निशानी है न मास्तर! ले यह लॉटरी का टिकट और काट दे बस का टिकट! एस. टी. को मालामाल होते रोकनेवाला तू कौन होता है मास्तर!'

उस समय भी मोरार बस में बैठा था. आज भी उसमें सवार है, लुलजर से बैठा है. पर जाना कहां है? तब उसने बताया कि आठ रुपयों में जहां तक पहुंचा जाये वहां तक, मतलब साफ है. टिकट लेना है बारह रुपयोंवाला, जाना है राजकोट, लेकिन पूरे रुपये नहीं देने हैं. भट्टीवाले नशे में बोलते हैं, जब कि इसकी रगों में खुद्दारी दौड़ती है, तभी तो मुंह से ऐसी बात निकलती है!

उमर ने दौड़ती बस का झटका सहते हुए कहा, 'आठ में तो राजकोट नहीं पहुंच पाओगे दोस्त. जंगलिया नाले के स्टैंड पर उतरना पड़ेगा. बोल काट दूं? या फिर मन में जो भरा पड़ा है वह उगल दूं. उसने उसी अंदाज़ में अपना पंच खटखटाया, अर्थात् संकेत में उसे आगाह कर दिया. 'राजकोट नहीं जाना है, वैसे जाना तो है दूनाकर,' पर ऐसा कहने के बजाय मोरार ने उत्तर दिया, 'आठ रुपयों में जहां तक का मिल सकता हो वहां तक का दे दो...'

'तो मेरी बला से, तोड़ अपने पैर.' उमर ने रुपये ले लिये और काट दिया टिकट. उसके मन में सवाल कौंध गया. 'साले को कहां जाना होगा?' लेकिन तुरंत ही सर्द हो गया, 'हमें क्या? जाये जहां जाना हो वहां.'

मोरार का मन गिनती में उलझ गया. जहां उतरूंगा वहां से दूनासर कितनी दूर पड़ेगा? पहले एकाध बार उधर गया भी था. कम से कम आठ-दस कोस तो होगा ही. यह बस वहां होकर ही राजकोट जायेगी. जाना है दूनासर पर ले कौन जायेगा? वैसे तो डेढ़-दो रुपये ही कम पड़े होंगे. और! उसके दिमाग में बीते हुए कुछ घंटों की उथलपुथल फिर ताज़ा हो उठी. इन आठ रुपयों के लिए भी क्या कुछ नहीं हुआ? 'ओ... हो... हो, ओ... हो... हो...' बात करते ही मां ने रसोई घर में पतीले पटके, बाद में लोहे के तवे पर जोरों से कुलछी की आवाज़, इसके बाद तेज-तरार तड़के से उठे धुंये से खांसना. मोरार दूनासार जाने के लिए पैसे मांगे इसकी प्रतिक्रिया के रूप में मां ने अपना गुस्सा इस प्रकार प्रकट कर दिया. उधर पिता की ओर देखा तो उत्तर में सिर पर पगड़ी धरे वे घर से बिदा हो चले. मां का रोब ही कुछ ऐसा था. मां का ऐसा तिलमिलाया रूप देखकर पिता हमेशा घर छोड़कर चौपाल की शरण लेते. वहां जाकर बैठे हुए कुछ यारों के बीच अपनी बहादुरी सुनाते. तब दो पैरों के बीच दबी हुई पिता की अपनी दुम देखकर वह मन ही मन खुश होता और हल्की सी टीस भी उसके दिल में उठ जाती. मोरार ने जब से होश संभाला तब से लेकर आज अट्ठाइस साल की उमर तक वैसा ही नज़ारा देखता रहा है. आज जो हुआ वह उसी की झलक थी. इंजिन से भाप निकलती हो उसी तरह रसोई-घर से मां ने अपनी असली जबान की कैंची चलायी, 'हमार ललवा को लुगईवा लग गइन है! मगर बबुआ दो पैसे कमाई करना तो सीख. अपनी जुरवा को क्या खिलायेगा, अपना सिर?' इसके बाद न जाने क्या कुछ बोलती रही. उसके मुंह से जो बोल निकल रहे थे कत्थे की रस्सी की गेंद के समान ही. वह तो लिपटी हुई हीं अच्छी, उसे खोलना ही बेकार. मोरार दो पल के लिए तिलमिला गया. मन ही मन कहने लगा कि तू तो मेरी अपनी मां है या सौतेली? तेरी कोख़ से पैदा

हुआ हूं तो क्या गुनाह किया है मां? रात-दिन बही-खाते में अपनी आंखें फोड़कर और कमर तोड़कर हर माह चार सौ रुपये लाकर घर में कौन देता है? क्या तूने मुझे ठीक से पढ़ाया? अच्छी नौकरी पाने लायक बनाया? खुद के सीने के दूध से भी तूने मुझे खिट-खिट ही पिलायी है और निवालों में भी वही खिलाया है. मेरा बाप तो फिर भी तेरे लिए पराया खून है, पर मैं? मैं तो तेरी अपनी कोख़ से पैदा हुआ हूं न? लेकिन जबान न चल पायी, सामने से आती हुई हवा ही कुछ ऐसी तेज़ थी. सिर्फ आज ही क्यों, हर रोज ऐसी ही चलती रहती. चैन से कभी निवाला गले उतरने नहीं दिया है. सिर पर कभी ममता का हाथ भी नहीं फेरा है. हमेशा तीखे तीर ही चुभोती रही है. दादी ज़िंदा थी तब मां के लिए कहा करती कि यह कोई आसुरी आत्मा है.

मोरार भी आहें भरता हुआ पिता के पीछे-पीछे घर से बाहर निकल गया. कुछ तेज कदम भरते हुए पिता के नज़दीक पहुंच गया. पिता को आवाज़ भी न देनी पड़ी, उन्होंने खुद पीछे मुड़कर देखा तो वह अवाक् रह गया. पिता का चेहरा उतरा हुआ था, जैसे भीतर कोई भारी पीड़ा ने घेर लिया हो ऐसी बेनूरी आंखों से बेचारगी टपक रही थी. अनाप-सनाप बढ़ी हुई सफेद मूछों की आड़ में छुपे ओंठ कुछ बोलना चाहते हों फिर भी बेबसी का अहसास. मोरार सिहर गया. अपने शिकवे को पूरा निगल गया और पिता के पास आकर सीधी सफाई पेश करने लगा,' मेरी ही ग़लती थी कि मैंने मांग लिये. दूसरे माह की तनख्वाह मिलने पर गया होता तो क्या बिगड़ जाता? जाने दीजिए बापू, दुःखी मत होइए. वैसे मेरी मां की बात में भी दम है. मेरी जवानी कहां फटी जा रही है.'

'उन लोगों ने तुझे आज ही बुलाया है?'

'बुलाया तो आज ही है.' मोरार ने कहा, 'पर न जाने से थोड़ा ही आसमान फट जानेवाला है?'

'क्या नाम बताया तूने उनका? चलते पैरों को रोकते हुए पिता ने पूछा, 'मैं नाम भूल गया.'

मोरार भी पल भर के लिए रुका. उसे भी नाम याद करना पड़ा, बोला, 'जीवराज कानजी उसदडिया... अभी तक अफ्रीका में बसे हुए थे. तीन-चार साल से वापस लौटे हैं. दूनासर में खेती-बाड़ी है. कंट्रक्टरी भी कर लेते हैं. आगे की बात पिता के न पूछने पर भी बता दी. 'रूडाबापा का मनजीडा सब कुछ तय करके आया है.'

'मनजीडा नहीं आ रहा है?'

'उसे आज काम पर खेत में धकेल दिया, रात को भी वहां ही रुकना है.'

'यह कुछ अजीब-सा लग रहा है,' तंग गली में सामने से तीन भैंसो को आते देख पिता किनारे सरक गये. उन्होंने मुरार का हाथ पकड़कर अपनी ओर खींच लिया. बात को आगे बढ़ाते

६ जुलाई १९३८, जेतपुर (सौराष्ट्र); वाणिज्य स्नातक

गुजराती साहित्य जगत में रजनी कुमार पंड्या का नाम प्रथम पंक्ति में लिया जाता है. गुजरात साहित्य अकादमी का पुरस्कार प्राप्त चार पुस्तकों सहित आपकी तीस पुस्तकों में उपन्यास, कहानी संग्रह, शब्द चित्र और सामाजिक चिंतन की पुस्तकों का समावेश है.

राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय चैनल पर हिंदी में प्रसारित धारावाहिक सत्य घटना पर आधारित आपके उपन्यास 'कुंती' से प्रेरित था. लेखन की व्यस्तता के कारण १९८९ में आपने एक राष्ट्रीयकृत बैंक के पद से स्वेच्छा सेवा निवृत्ति ले ली थी. सन १९९४ में अमरीका जाकर वहां बसे हुए पात्रों के बीच रहकर आपने 'पुष्पदाह' वृत्तचित्रात्मक-उपन्यास का सृजन किया जो गुजराती में एक मील का पत्थर माना जाता है.

अनेक पुरस्कार तथा मान-सम्मान से विभूषित रजनी कुमार पंड्या पूर्णकालिक लेखक-पत्रकार हैं.

संप्रति : डी-८, राजदीप पार्क, मीरा टॉकीज चार रास्ता, बलिया काका रोड, मणिनगर, अहमदाबाद - ३८० ०२८

हुए बोले - 'ऐसे मामलों में लड़कीवाले पहले लड़के के मां-बाप के साथ बात करेंगे कि सीधा उम्मीदवार को बुला लेंगे?'

'कुछ सुधरे हुए हैं. मनजीडे के साथ संदेशा भेजा कि पहले लड़का देख लें. उसे लड़की पसंद हो तभी बात आगे बढ़ेगी. आरंभ में पूरा झमेला खड़ा करना हमें पसंद नहीं है.' मुरार ने कहा.

'हां, भाई! मालिक का कोई मालिक है! जैसी जिसकी सोच, चला जा.' पिता ने हरी झंडी दिखा दी.

इस पर एक बात मोरार के ओठों तक आकर रुक गयी कि कैसे चला जाऊं? आने-जाने का किराया तो...

लेकिन बोलने की ज़रूरत न पड़ी. पिता अपनी जेब की गहराई को टटोलने लगे. जेब खाली करते गये. पहले चिलम में भरने के लिए रखे हुए तंबाकू के सूखे पत्ते, सिलवटों में बंद सहकारी मंडली की खाद की रसीद, वैसे की कुछ रेवन्यू-टिकट, दियासलाई का बक्स, अंत में दो-दो रुपये के नोट निकाले, कुल मिलाकर चार निकले. जिस रूप में बाहर आये उसी रूप में मोरार के हाथ में थमा दिये और बोले, 'चप्पल पहनने के लिए भी वापस घर मत जाना,' और पैरों से रबर की चप्पल निकालीं, 'ले इसे पहनकर सीधा रवाना हो जा.'

इस पर मोरार ने कहा, 'इन्हीं कपड़ों में? कुछ साफ-सुथरे तो!'

उसके कपड़ों की ओर देखकर उसे मशवरा देते हुए बोले, 'एक बार अगर घर गया तो गया काम से, जा नहीं पायेगा और देखनेवाले तुझे देखेंगे, कपड़ों को नहीं.' और फिर आह भरते हुए बोले, 'लोग कपड़े तो कितने बढ़िया पहन लेते हैं, लेकिन उनके भीतरवाला कैसा आसुरी होता है! क्या तू देखता है?''

उनका इशारा आहों से निकले तीर-सा था. किसकी ओर था? मोरार के चेहरे पर बेबस हंसी की झलक दौड़ गयी. अपनी मां हमेशा सजी धजी ही रहती, इसके चर्चे पूरी बस्ती में होते थे. दाग की हिम्मत नहीं होती थी कि मां की साड़ी को छू पाये! और अगर कहीं छू गया तो आधी मंज़िल से लौट आती घर, साड़ी बदल देती. मोरार के मन में एक तीखी टीस उठी. इसीलिए मां ने कभी उसे अपनी गोद में खेलने नहीं दिया. कहीं दाग लग गया तो! मिट्टी में खेलते हुए वह कभी अपनी मां का पल्लू पकड़ नहीं पाया. मां ने कभी उसके जूठे हाथ भी नहीं धो दिये. दूर से पानी डालकर कहती धो ले... धो ले... पांच साल का था तबसे ऐसी परवरिश के घूंट पीता रहा. पिता के मुंह से यों ये सब अनायास नहीं निकला है. सजी-धजी मां ने बालक मोरार को कभी अपनी छाती तक नहीं जाने दिया है. ऐसे छोटे-से गांव के घर में दादी के पैरों से दूध की बोतल टकरा जाती तो वह तिलमिला जाती. ऐसी बातें उसे बुआ ने बताई थीं. ग़लत कैसे होंगी.!

पिता ने पूछा, 'इतने से काम चल जायेगा?'

'कैसे चल जायेगा?' मोरार जानते हुए भी चुप रहा. जानता था कि बताऊंगा तो भी पिता कहां से दे पायेंगे? बेहतर यही होगा कि इतने रुपयों से जहां तक बस से पहुंचा जायेगा, पहुंचना है. शेष के लिए जवान पैर तो हैं ही. आज वे थोड़े ही इंकार करेंगे? लौटते समय देखा जायेगा. कोई टेंपो-वेपो मिल जायेगा तो उसी पर लटक जाऊंगा. एक बार पहुंचे तो सही. उसके पैरों में गर्मी आ गयी. रहावन तक पहुंचते ही बस आ गयी. ज़रा मुश्किल से ज़गह भी मिल गयी.

❐

टिकट काटने का अभियान पूरा करके उमर भाई मोरार की बगल में बैठकर अपना बक्सा पलटाकर उस पर एक कागज़ में अपना हिसाब-किताब निपटाने लगे. विशेष कोई दिलचस्पी नहीं रखते हुए उसने पूछ लिया, 'आज राजकोट नहीं जाना है?'

'नहीं.' मोरार ने कहा, 'रोज़-रोज़ राजकोट में क्या धरा है?' अगर आगे पूछेगा तो कहूंगा कि दूनासर लड़की देखने जाना है लेकिन ऐसी नौबत नहीं आयी. उमर ने पूछा तो नहीं, हिसाब निपटाकर खड़ा हो गया और एक पियक्कड़ के पास जाकर बैठ गया. मोरार खिड़की से बाहर झांकते हुए सोचने लगा. ब्याह रचाने की सारी भाग-दौड़ भी खुद ही करनी पड़ती है. चलिए, यह भी गनीमत है, लेकिन इसके बाद क्या? सोच आगे न बढ़ पायी क्योंकि पत्नी को लेकर मोरार के दिमाग में कोई साफ छवि ही न उभर पायी थी. नारी देह तो नज़र में थी लेकिन पलभर में वह मां के रूप में पलट जाती और तुरंत जलन का अहसास हो जाता. जिस पेड़ से शीतल छाया की आस रखी हो उसी के तने से अगर कांटा चुभ जाये तो इंसान क्या करेगा? छांव छोड़कर वह धूप की चुभन से कुछ कम जलायेगी. बस, लुगाई को लेकर मन में उठी विचारधारा इसी तरह लुप्त हो जाती.

'तेरा उतरने का स्टैंड आ गया, चल उतर.' उमर ने घंटी बजाते हुए बस को रोक दिया.

मोरार हड़बड़ाता हुआ उतरने लगा तभी बस के दरवाज़े की एक कील में उसकी कमीज़ फंसी, कुहनी के ऊपर के हिस्से को फाड़ते हुए हाथ की चमड़ी को भी खरोंचती गयी.

❐

उसने देखा सूरज सिर पर चढ़ आया था. नाला पार करते हुए वह कुछ तेज़ कदम चलने लगा. सड़क की तुलना में यह रास्ता कुछ नज़दीकी का था.

दबे-सहमे पैरों से एक घर के किवाड़ को खोलकर जैसे ही वह भीतर दाखिल हुआ कि सामने दो हट्टे-कट्टे जवान खड़े थे. दो दिन की चढ़ी हुई काली-कांटेदार दाढ़ीवाले, बड़ी-बड़ी आंखोंवाले चेहरों को देखकर उमर के पैर वहीं थम गये. कुछ सकपकाई हंसी को देख दोनों में से एक ने आंखों के इशारे से ही पूछ लिया, 'किस का काम है?'

मोरार बोला, 'लुलजर से आ रहा हूं - मोरार मेरा नाम.'

दूसरे ने पूछा, 'किससे मिलना है?'

मोरार की दबी हुई आवाज़ मुश्किल से बोल पायी, 'जीवराजभाई का घर यही है?'

'हां, क्यों?'

'मनजी रूडा लुलजरीया... उसने...'

'अरे हां... आं... आं...,' दोनों एक साथ बोल उठे और कुछ मुस्कुराये भी.

'बापू उधर अहाते में बैठे हैं, जाइए.'

नज़र दौड़ाई. एक छोटी-सी चारपाई पर जीवराज उसदडीया कुछ आराम फरमा रहे थे. दूधों नहायी चद्दर चारपाई के पैरों तक झूल रही थी. मोरार आगे बढ़ा, अकस्मात ही उसकी नज़र उत्तर दिशा की ओर गयी. घर के साये में एक लड़की उकड़ू बैठी हुई किताब पढ़ रही थी. पैरों से उजलापन टपक रहा था. पैर घुटनों से लेकर आधी मंज़िल तक बेनकाब झूल रहे थे.

मोरार के मन में सवाल कौंध गया, 'क्या यही होगी?' उत्तर मिला, 'किसे पता?' लेकिन तभी आहट सुनकर लड़की ने चेहरे की आड़ में लगी पुस्तक को हटाया. सुरेख छवि साफ हुई. छोटी-सी ठोड़ी, उजला रंग, ढंग से संवारे गये बालोंवाली लड़की

थी. सीने पर लाल चुनरी. हाथों में ढेर सारी चूड़ियां. पूरी दुलहन बनने के मनसूबे बांध बैठी हुई लगती थी क्योंकि चेहरे से कंवारेपन के साथ सपनों की अभिव्यक्ति की ठोस ललक भी छलकती थी. तभी जीवराज उसदडीया ने खंखारने की आवाज़ के साथ पूछा, 'कहां से आना हुआ?'

'लुलजर से,' वह बोला, 'मनजी रूडा...'

'अ... च्छा... आ... आ...!' उनके गले से निकली घुटी हुई आवाज़ ने आगे कहा, 'समझा... आ... आ...' इतना बोलते हुए एक तेज़ तीखी नज़र मोरार को सिर से पांव तक देख गयी.

'इधर चले आइए.'

मोरार पास पहुंचा तो हाथ के इशारे से उसे खाट पर ही बिठाया. बस से उतरते समय मोरार की कमीज़ की आस्तीन फट गयी थी वह ठीक जीवराजभाई की आंखों के सामने आकर ठहर गयी. मोरार कुछ झेंप-सा गया. हाथ से छुपाते हुए बोला, 'आज ही बस में...'

'आपके पिताजी क्या करते हैं?'

मोरार लड़की की ओर कनखियों से देखने लगा. लड़की फिर से पढ़ने में मशगूल थी. मोरार ने नज़र फेर ली. बोला, 'खेती-बारी है, करीब चालीसेक बीघा जमीन है.'

'भाई-बहन?'

'एक भी नहीं.'

'पढ़ाई कहां तक की है? क्या करते हो?'

'ग्यारहवीं कक्षा तक... दूकान पर काम करता हूं.' आगे बिना पूछे ही उसने बता दिया, साढ़े चार सौ तनख्वाह मिलती है माह की. एक माह का बोनस, दो जोड़े कपड़े... आगे जाकर सेठ ने नयी दूकान पर साझे में बिठाने को बोला है.'

पानी पीते हुए मोरार ने सोचा. अफ्रीका से लौटकर यहां बसे हुए इनको क्या मेरी आमदनी जंचेगी? सोचने लगा... कुछ बढ़ा-चढ़ाकर बोल दिया होता तो? यानि, नौ सौ तनख्वाह, दो माह का बोनस... और फिर अपनी ही सोच पर वह मन ही मन मुस्कुरा गया. अगर मनजीडे ने सब कुछ सही-सही बता दिया होगा तो? तपाक से कह देते, 'ऐसा फ़रेब करते हो?'

दूसरे तीखे सवालों के सही उत्तर देने के लिए वह बेताब हो गया. तभी अचानक जीवराजभाई बोले, 'हम अफ्रीकावाले दकियानूसीपन में विश्वास नहीं करते, काम की बात...' उन्होंने लड़की की ओर इशारा करते हुए कहा, 'देखिए, वहां बैठी-बैठी जो पढ़ रही है वह मेरी बेटी है. नाम है उसका प्रज्ञा, देख लो.'

'मतलब?' मोरार के मुंह से अनायास निकल गया.

'पहले यहां बैठे-बैठे नज़र भर देख लो.' पिताजी बोले, बाद में अगर तुम्हें उसका चेहरा-मोहरा पसंद आ जाये तो जाओ, जाकर रूबरू मिल लो, कुछ बातें कर लो - यहां अहाते में बैठकर ही. अगर तुम उसे पसंद आओगे और, उसे तुम पसंद करोगे तो बाद में अपने माता-पिता को भेज देना या फिर हम तुम्हारे घर आ जायेंगे, लेकिन पहले यहां बैठकर ही देख लो.'

मोरार झुंझला उठा. बाप की उपस्थिति में बेटी को गौर से कैसे देखा जा सकता है? वह मन ही मन सिमट गया. लेकिन अकस्मात उसकी निगाह लड़की की ओर गयी. लड़की उसे अनिमेष देख रही थी. उसने अपनी किताब बंद कर खटिया पर रख दी थी. मोरार भी उसके सामने देखता रह गया. यों लड़की होते हुए भी पूर्ण पुख्ता खिली हुई कली ही थी जिसके नैन कुसुमित होने को लालायित थे... आंखों में सवाल! सवाल या फिर विस्मय? रूपवती - अर्थात् गोरा रंग, मां के समान ही गोरी-उजली. तभी अचानक मोरार के मन में एक टीस-सी उठी. बीच में मां कैसे आ गयी? मन को स्वस्थ करने के लिए उसने अपना सिर झकझोर दिया और फिर प्रकृतिस्थ हो गया. ग्रीवा, बांहें, गर्दन में लटकती माला, भरा पूरा सीना... फिर से न जाने क्यों उसे मां की याद आ गयी. ओह, लेकिन इस बार उसने सिर को झकझोरा नहीं, कुछ देर के लिए वह निरा बालक बन गया. अभी तक उसके भीतर एक बालक ज़िंदा था, तभी उसके भीतर अतृप्त कामना जाग उठी, सिहरन हुई और शांत हो गयी. लड़की दोनों हाथ अपनी गोद में धरे बैठी थी... अचानक उसने अपनी गर्दन घुमा ली.

'मिल लूं?' मोरार ने पूछ ही लिया.

'बेझिझक...' जीवराजभाई बोले, 'जाओ...'

मोरार खड़ा हुआ. चार कदम आगे बढ़ा और तभी अपने मैले कुचैले कपड़े, सस्ती टूटी-फूटी चप्पल, आस्तीन पर पड़ी खरोंच, बिना तेल के बालों की फरफराहट का तीव्र अहसास हुआ. मुझे तो वह कुछ जंच गयी है, पर मेरा क्या? अगर मैं उसे पसंद न आया तो क्या मुंह लेकर गांव लौटूंगा?

फिर भी वह आगे बढ़ा. पीछे से वही रोबदार खर्राहट सुनाई, दी. मोरार ने चौंककर पीछे देखा. क्या कुछ ग़लती हो गयी? नहीं... नहीं... यह तो जीवराजभाई के भीतर चले जाने का संकेत था. अहाते में अब खुला-खुला एकांत.

'आइए भी!' प्रज्ञा ने जब हंसते हुए मोरार को बुलाया तो उसकी आवाज़ की पहचान भी उसे हो गयी. कुछ-कुछ मां जैसी आवाज़ थी. ओह, फिर से मां. जिस तरह कोई अपनी जिह्वा पर चिपकी हुई खुरंड उड़ा दे ठीक इसी तरह उसने अपने दिमाग में उठा हुआ विचार झाड़ दिया. वह आगे बढ़ा. प्रज्ञा अपनी खटिया पर ही एक छोर पर सरक गयी तो मोरार उसके दूसरे कोने पर सहमा हुआ बैठा और उसने पूछा, 'कैसी हैं?'

'हमें क्या होना है?' उसने मुस्कुराते हुए कहा, 'आपके आने से विशेष खुशी हुई.'

'कितना मीठा बोल लेती हैं?' मोरार ने कहा, 'मुझे तो ऐसा बोलना भी नहीं आता.' प्रज्ञा बोली, 'ज़रूरी है क्या? मीठा तो तोता भी बोल लेता है.'

'आपके फादर,' मोरार ने जान-बूझकर पिताजी के बजाय 'फादर' शब्द का प्रयोग किया. 'उन्होंने फरमाया कि पहले दूर से देख लो, पसंद आने पर ही बातचीत के लिए जा सकते हो.'

मारे शर्म के प्रज्ञा ने सिर झुका लिया, 'बातचीत करने के बाद अगर पसंद न आया तो?'

'किसे?' अचानक मोरार के दिल की बात जबां पर आ गयी. 'क्या आप ऐसा बताना चाहती हैं कि मैं आपको पसंद न आया तो?' प्रज्ञा कुछ हांफने लगी. उसका भरा-पूरा सीना उछलने लगा. मोरार के दिल में भारी उथल-पुथल मची. बड़ी मुश्किल से उसने किसी दूसरी छवि को आते हुए रोक लिया. फिर भी मन में जलन तो हुई. दादी और बुआ के शब्द याद आ गये. जिन्हें पलभर में उसने खदेड़ दिया.

प्रज्ञा अपने नाखूनों की ओर देखने लगी. मोरार उसके मन की बात ताड़ गया. उसने उत्तर नहीं दिया - मैं अगर पसंद न आया तो? ऐसा ही पूछा था. उसके उत्तर के अंतराल में छुपा उत्तर मिल गया - नहीं पसंद पड़े हो. अगर पसंद आया होता तो साफ-साफ बता देती! बात तो बिल्कुल वाजिब भी है. कहां वह, कहां मैं? फिर भी...

'मेरी तनख्वाह साढ़े चार सौ है, जो इस दिवाली पर साढ़े पांच सौ हो जायेगी,' उसने कहा. 'सेठ बंबई ले जाने के लिए भी कह रहे थे. आपको तो पता है, बंबई की ज़िंदगी के बारे में! जो गांव में देखने को नहीं मिलता है वैसा सबकुछ वहां मिल जायेगा. आपको तो क्या बताना, आप तो अफ्रीका से आयी हैं, ऐसे में गांव की ज़िंदगी कैसे रास आयेगी?'

बिल्कुल भोली-सी सूरत बनाकर प्रज्ञा ने उसके सामने देखा. पूछा, 'चाय तो पीते हैं न?'

गर्दन हिलाकर मोरार ने हामी भी भर दी. चाय तो क्या? पेट में चूहे दौड़ रहे हैं और यह पूछ रही है कि चाय तो पीते हैं न! मोरार ने फिर-से बांह पर पड़ी खरोंच को छुपाने का प्रयास किया. तभी प्रज्ञा उठकर भीतर चली गयी.

मोरार ने देखा, आंगन में कुछ चिड़ियां फुदक रही थीं. इनके अलावा कोई नहीं था. दो मिनट में पूरा आंगन आंखों में समा जाये ऐसा माहौल था. पर अब देखने से फायदा भी क्या? ना पसंद... ना पसंद... मेरे जैसा मुफलिस उसे कैसे पसंद आयेगा? कितना पढ़ी लिखी होगी? कैसा-कैसा पढ़ती होगी? खटिया पर पढ़ी पुस्तक की ओर मोरार ने देखा, जिसे कुछ देर पहले वह पढ़ रही थी. किस विषय की पुस्तक होगी? उसने पुस्तक हाथ में ली, खोली. भीतर एक लाल पेन्सिल भी थी. उसी पेन्सिल से ज़गह-ज़गह पर रेखाएं अंकित थीं. लेकिन पुस्तक किस विषय की थी? ओह, यह तो पाक-शास्त्र की पुस्तक थी जिसमें विभिन्न प्रकार की बानगियों का वर्णन था, उसमें रंगीन चित्र भी थे. पढ़ने से अधिक देखने से ही जी ललचा जाये वैसी ही. मोरार की नज़र उस पर गड़ गयी. दस का नोट! कितनी बड़ी पूंजी? लौटने का पूरा किराया ही समझिए. आराम से घर पहुंचा जा सकता है. लेकिन दूसरे ही पल विचार आया, पर हमारा कहां है यह दस का नोट, या नोटवाली भी? जैसा था वैसा ही उसे वापस रखकर पुस्तक बंद कर दी और नीचे रख दी. उसे अपनी खाली जेब के विचार सताने लगे.

उसने देखा, हाथ में ट्रे लिये प्रज्ञा आ रही थी. चेहरे पर हल्की-सी मुस्कान थी. ट्रे को जब नीचे किया तब पता चला कि उसमें चाय के साथ गरमागरम नाश्ते की बड़ी प्लेट थी. आलूपौहे थे, ऊपर दाड़िम के दाने और साथ में चम्मच भी.

'इतना सारा?'

'कहां ज्यादा है?' वह बोली, छोटी-सी खटिया पर रखते हुए उसने पानी का प्याला दिया. ज़रूरत ही थी, मोरार का गला कब से सूखा जा रहा था. बाद में उसने प्लेट आगे बढ़ाई, भूख तो कितने जोरों की लगी थी. पर सारा का सारा थोड़े ही खाया जाता है?

'आपने बनाये?' उसने खाते हुए पूछा.

प्रज्ञा ने हल्की-सी मुस्कान ली, 'क्यों गले नहीं उतर पा रहे हैं?'

'क्या बात करती हैं? ऐसा हो सकता है?' मोरार बोला एक चम्मच और खा लिया, 'फसकिलास हुए हैं.' - बोलना चाहता था कि 'ऐसे तो कभी नसीब नहीं हुए हैं,' पर जबान को रोक लिया, सोचा कैसा बुरा लगेगा? और वह प्रज्ञा के सामने ताकता ही रहा. पूछा, 'आप नहीं लेंगी?'

'मुझे तो देखना बहुत पसंद है.'

वाकई, किसी को खाते हुए देखना पसंद आता होगा? मोरार ने उसकी आंखों में झांकने की कोशिश की. यकीनन... वह पूरी तृप्त होकर निहार रही थी... खड़े होकर मोरार ने एक कोने में अपनी उंगलियां धो डालीं. बेटा! आज के दिन खा ले उसके हाथ का, हमेशा के लिए खानेवाला तो कोई और पैदा हो चुका होगा, खुशकिस्मत !

'चाय...' प्रज्ञा ने चाय का प्याला आगे बढ़ाया. मोरार ने ले लिया. तश्तरी में डालकर थोड़े ही पिया जायेगा? कितना बेहूदा लगेगा? ओंठ जलें तो जलें पर सीधे कप से ही पीनी चाहिए.

लेकिन ओंठ कुछ अधिक ही जल गये. कुछ चाय कपड़ों पर भी गिरी... कितना बुरा हुआ? मोरार शर्मिंदा हो गया. चाय का कप नीचे रखकर कमीज़ पर पड़ा दाग साफ करने गया. तभी वह खड़ी हो गयी. 'रहने दीजिए... पहले पी लीजिए... दाग तो बाद में भी धोया जायेगा, धो दूंगी.'

ठीक है यह लल्लोचप्पो... मोरार मन ही मन हंस पड़ा. इन सब बातों में क्या धरा है? हां, अगर, ज़रूरत है तो किस की? उसका ध्यान पुस्तक की ओर गया.

अब जाना चाहिए. कमीज़ पर पड़ा दाग भी धुल गया था. सूख भी गयी है कमीज़, इसलिए अब तो निकल जाना चाहिए. साढ़े चार बज रहे हैं, हाईवे पर पहुंचते-पहुंचते पांच बज बजेंगे. खाली जेब बस में कौन बैठने देगा? कोई ठेंपों मिल गया तो ठीक है वर्ना पैरों का कचूमर निकल जायेगा... जब तक चल पाऊंगा...

उसका ध्यान फिर से पुस्तक की ओर गया.

'पुस्तक बहुत पसंद आ गयी है क्या?' प्रज्ञा ने पूछा.

'पुस्तक तो नहीं,' मोरार ने कहा, 'उसमें समायी एक चीज़.'

'बानगी के भी शौकीन हैं आप?'

'नहीं, ऐसा नहीं है पर,' मोरार के दिल को भीतर से एक धक्का सा लगा. वह बोल ही गया, 'भीतर एक दस का नोट...'

'हां है,' प्रज्ञा बोली, 'अभी-अभी चारेवाला दे गया. मैंने किताब में रखा है.'

'उसे...' मोरार बोल, 'आप उसे मुझे दे पायेंगी?'

प्रज्ञा कुछ समझ नहीं पा रही थी कि यह आदमी इस तरह क्यों हकला रहा है?

'मेरे पास,' मोरार बड़ी मुश्किल से बोल पाया, 'मेरे पास वापस गांव लौटने के लिए बस का किराया नहीं है. आते समय भी पूरा नहीं था फिर भी आ गया. लेकिन अब वापस लौटने की समस्या है. मैंने आपको बताया नहीं था?' कुछ सांस लेकर बोला, 'मैं तो बिल्कुल मुफलिस आदमी हूं...'

'सब कुछ, मनजीभाई ने मुझे सबकुछ बता दिया है. आपके पिताजी... आप की मां... उनके बारे में...'

मोरार भीतर से पूरा सिहर गया... गये काम से...

'मैं तो उधार ही मांगता हूं.' उसने दस का नोट हाथ में लिया. 'दो-चार दिनों में वापस लौटा दूंगा. बहुत करके मनजी के साथ ही...'

प्रज्ञा मोरार के सामने पलभर देखती रही. उसका पूरा चेहरा कुछ बोल रहा था. जबान तो चुप थी फिर भी बड़ी मुश्किल से वह बोली - 'किसी के साथ लौटाने की ज़रूरत नहीं है.'

'ऐसा कैसे हो सकता है?' मोरार ने कहा, 'किसी से उधार लिया हुआ तो वापस लौटाना ही पड़ेगा.'

'लौटाना ज़रूर.' प्रज्ञा ने कहा, 'दस नहीं ग्यारह लौटाना...' बाद में शर्माते हुए बोली, 'हमारे ब्याह के समय सबसे पहले मैं ही शगुन के मांग लूंगी.'

उसने चुनरी का पल्लू कसकर सीने से लपेटा. मोरार पलभर में जवान हो गया.

अनुवादक : **श्री नवनीत ठक्कर**

न्यू उपासना विनय मंदिर,
रायपुर दरवाजे के बाहर, अहमदाबाद - ३८००२२

उजाला

✍ **मोती लाल**

मुझे अच्छा लगता है
कटे-फटे चांद के बजाय
भरा-पूरा चांद.
मुझे अच्छी लगती है
शांत नदी के बजाय
संगीत छेड़ती नदी.
मुझे अच्छा लगता है
गर्मी से झुलसे फूलों के बजाय
सर्दी से जूझता हर फूल.
मुझे अच्छा लगता है
कविता सुनाने के बजाय
कविता बुनना.
मुझे अच्छा लगता है
सुबह-सुबह मंदिर की घंटी
मस्जिद की अज़ान
चिड़ियों का कलरव
और सूर्य का उगना.
मुझे अच्छा लगता है
हरा रंग,
जैसे बिना फूल के पत्ते.
लाल रंग,
जैसे शाम की लालिमा भरा आकाश
पवित्र आदमी,
जैसे महान सुकरात की मुस्कान
निश्चल सेवा,
जैसे मदर टेरेसा का समर्पण.
मुझे अच्छे लगते हैं
समस्त जीव,
समस्त संभावनाएं
जो दे सकें
मानव को उनका अर्थ
सारे तर्कों को ताक पर रखकर
और जल सकें वे दीप
सारे अंधकार को मिटाकर.

ई-२४२, वंडामुंडा, राउरकेला - ७७० ०३२

समर्पण

'ते ने ठीक से देख लिया सब सामान उतर गया की नी?'

पसीने में तरबतर चेहरे को कंधे पर लटके हुए कपड़े के टुकड़े से साफ करते हुए भीलू ने सेमल की ओर प्रश्न-सूचक निगाह डाली.

सड़क के किनारे रखे हुए सामान की ओर देखकर सेमल ने घुटने तक की फ्रॉक पहने खड़ी सात आठ वर्ष की ज्योति की ओर आंखें घुमायीं - 'जोति, सब है ना...'

'औरत है कि चक्करघन्नी, मैं तेरे से पूछ रहा हूं, और तू छोरी से.' भीलू झुंझला गया.

'मेरी जान तो सब आ गया, उसको तो मैंने गिनती करने को कहा था. जरा से में तुम भी क्या कपड़े चीरने लग गये.' शहरी लटके-झटके में भीलू की ओर घूरते हुए सेमल ने कंधे तक फिसल आये साड़ी के पल्लू को ठीक से सर पर डाल लिया तथा झमककर सड़क के किनारे खाली ओटले पर तीन बरस के जंबू को गोद में लेकर आलथी-पालथी मारकर बैठ गयी.

'जोति, कुत्ते को भगा, डिब्बे पर मूत नी ले.' ज्योति ने 'भग-हट' की दुत्कार के साथ, सड़क से एक पत्थर उठाकर कुत्ते पर फेंका तथा चौकीदारी की चौकन्नी मुद्रा में सामान के आगे खड़ी हो गयी.

भीलू, टीन-टप्पर सहित, शहर से स्थायी तौर पर वापस गांव लौटा था. पांच साल का पूरा समय हो गया. गिनती में महीने-दो महीने इधर-उधर हो भी गये तो कौन फर्क पड़ता है, इत्ता पुख्ता हिसाब तो औरत बच्चा जनने में भी नहीं रखती. उसने अपने शहरी साथी रामचंदर की बोलचाल में सोचा, तथा इधर-उधर ताकने लगा.

इत्ता सामान लेके जामन्या जाये तो कैसे? जामन्या इस बजरंगपुर कस्बे से खाली तीन-साढ़े तीन मील दूर उसके बाप-दादे का पुश्तैनी गांव. थोड़ा बहुत सामान होता तो कंधे, माथे पर सब उठा लेते. पर सब याने कौन? वह अकेला ही तो है. सेमल, जंबू को उठायेगी कि डब्बा कनस्तर, गोदड़ी-पोटली, ज्यादा हुआ तो बाल्टी हाथ में लटका सकती है. जोति से क्या बनेगा, ज्यादा डांटा-फटकरा तो एकाध दाग माथे पर धर लेगी.

भीलू इधर-उधर लंबी निगाह डालकर कुछ खोज रहा था. उसकी इच्छा हुई किसी से जान ले कि, सामान ले जाने का कोई साधन मिल सकता है क्या? पर न जाने कौन सी ग्रंथि से ग्रस्त होकर उसने इसे बड़ी बात मानकर किसी के सामने रखना उचित नहीं समझा. उसके मन में न जाने क्यों केवल यही विचार आ रहा था कि किसी से पूछ लिया और उसने कह दिया कि -' बेटा! तेरा घराना सामान क्या लोगों को तोकते तोकते मर खप गया और तू इत्ता रईस हो गया कि तेरा माल असबाब किराये की गाड़ी में जाये? कौन करे तू... तू... मैं... मैं... आते ही भेजा ख़राब करना क्या फायदा?

सतीश दुबे

वह कुछ सोच ही रहा था कि, एक आदमी ने उसका ध्यान अपनी ओर बंटाया- 'क्यों रे भाई गधे करना है क्या?' पहले तो वह सकपकाया, फिर उसे याद आया कि बजरंगपुर में सामान ढोने के लिए गाड़ी-खच्चर या हाथ-ठेलों के साथ गधों का उपयोग भी होता है. भीलू की बांछें खिल गयीं. इसलिए भी कि, कोई मजदूरी मांगनेवाला, उसके सामने खड़ा था. जोड़-तोड़ कर चालीस रुपयों में दो गधे तय हुए.

चट्टानें और रेत से भरी सूखी नदी को पारकर भीलू का काफिला जब गांव की ओर जाने वाले रास्ते पर चलने लगा तो एक अजीब किस्म का अहं-भाव भीलू ही नहीं सेमल और छोटी उम्र में बहुत कुछ समझने वाली ज्योति भी महसूस कर रही थी. पता नहीं यह अहं शहर से पैसा कमाकर लौटने वाले व्यक्ति के रूप में था या मजदूर होकर भी, गधों पर सामान ढोकर ले जाने की सामर्थ्य रखने वाले व्यक्ति के रूप में.

कच्चे पक्के, छोटे-बड़े टीले ही टीले, खांखरा, बबूल और दूर कहीं दिखने वाले छायादार घने वृक्षों को भीलू बार-बार हसरत भरी निगाहों से देख रहा था. इस रास्ते और प्रकृति के इन स्थायी पारिवारिक सदस्यों से उसका पुराना रिश्ता रहा है. सबको वह बार-बार देखता जा रहा था और मन ही मन उनसे संवाद करता जा रहा था - 'तुम भले ही मत पहचानो, मैं तुम सबको जानता हूं तुम्हारे बीच खेला-कूदा, बैठा और मौका पड़ने पर मज़ाक-मज़ाक में तुम पर चढ़ाई भी की है.'

उसने देखा, गधे उनसे बहुत आगे निकल चुके थे. अपनी चाल तेज करते हुए, सेमल और ज्योति की तरफ उसने निहारा- 'अरे पांव बढ़ाव रे, कईं कीड़ी चाल चली रिया हो...' सेमल जो न जाने क्यों मन ही मन खुशी के लड्डू खा रही थी, भीलू की ओर देखकर मुस्कराई- 'तुम भी तो हाथी की चाल से जादा नी चल रहे हो.'

'लगउं एक...' भोलू ने खुशी के अंदाज़ में उसकी ओर थप्पड़ उठाया, और तीनों खिलखिलाकर हंस पड़े.

गांव-गोयरा और टीन-टप्पर नज़र आते ही, सेमल ने कपड़े व्यवस्थित कर घूंघट नाक तक खींच लिया. वैसे बलाई-टोले तक रास्ता गांव के बीच से होकर भी जाता था, किंतु उसने उनकी बिरादरी के टोले की ओर बाहर से जाने वाले रास्ते की ओर गधे मोड़ने का इशारा किया. उसने सोचा -'कौन, गांव के बीच से जुलूस निकाले. मौके-बे-मौके सबके बीच टेम-टेम पर राम...राम होती रहेगी, और छुट्टी. सबको धीरे-धीरे मालूम हो जायेगा कि भोलू वापस लौट आया.

जामन्या, दस हजार लोगों की बस्ती. जिसमें सभी बिरादरी के लोग बामन, बनिया, ठाकुर, बलाई, कुम्हार, लोहा, सुतार, नाई याने वे सब जिनका एक गांव में होना ज़रूरी है. अर्थ और अधिकार की संपन्नता की दृष्टि से ठाकुर-परिवार का नाम आसपास के गावों में ही नहीं बजरंगपुर से लेकर जिला और प्रदेश मुख्यालय की जानी पहचानी हस्तियों की ज़बान पर. इसी ठाकुर परिवार का पैतृक-बेड़ा गांव के मध्य में लंबा-चौड़े क्षेत्र में बसा हुआ है. उसके आसपास अन्य जातियां. बलाई टोले गांव के दक्षिण की ओर, कृषि मजदूरों के रूप में इस टोले के लोगों का महत्व अन्य छोटी मानी जानी वाली जातियों से बढ़कर है. आज़ादी के बाद शिक्षा तथा राजनैतिक चेतना की दृष्टि से भी इस टोले के लोग अगुवा रहे हैं. पंच, महिला-पंच तथा जनपद में इस टोले की भागीदारी महत्वपूर्ण रही है. चुनाव में चिरौरी के लिए सबसे पहले नेताओं का ध्यान इसी बस्ती की ओर जाता है. निरंतर इन लोगों में बढ़ती चेतना के लिए सबसे अधिक सजग और चौकन्ना रहना पड़ता है ठाकुर-परिवार को.

भगवान के मंदिर तक पहुंचते ही जैसे उसका पूरा इतिहास तथा महत्व ध्यान में आता है लगभग वैसी ही मनःस्थिति में रमकर भोलू चप्पलें बजाता हुआ पगडंडी पर चला जा रहा था.

भोलू का काफिला, टोले की ओर आते देख हलचल मच गयी. बुजुर्ग, नवजवान तथा औरतें इधर-उधर से घूरने लगीं. कुछ बच्चों ने भोलू के घर में दौड़कर उसकी मां को ख़बर दी. थोड़ी देर में पूरा टोला मानो हलचल से हिल गया.

घर में सब सामान व्यवस्थित रख भोलू ने राहत की सांस ली. सेमल, पीछे के कमरे की ओर निकल गयी तथा ज्योति और जंबू को दादी गोदी में लेकर ऐसे प्यार करने लगी मानो बरसों की तपस्या के बाद कोई निधि मिल गयी हो. टोले के लोगों से मेल-मुलाकात कर भोलू ने पूरे घर का निरीक्षण किया तथा खटिया पर जाकर लेट गया.

खटिया पर लेट तो गया पर केवल थकान दूर करने. नींद तो दूर, झपकी भी आने के लिए तैयार नहीं थी. खुली आंखें कच्ची छत पर बन रहे भविष्य के चित्रों को स्वप्न के बुलबुलों की तरह ताके जा रही थीं. ये चित्र वह उस छत पर भी पांच सालों तक

१२ नवंबर, १९४०, इंदौर,
एम. ए. (हिंदी तथा समाजशास्त्र)

शोधकार्य : *समाजशास्त्रीय सिद्धांतों के परिप्रेक्ष्य में प्रेमचंद-साहित्य का मूल्यांकन.*

प्रकाशित कृतियां : ***लघुकथा संग्रह*** : *सिसकता उजास, भीड़ में खोया आदमी, राजा भी लाचार है, प्रेक्षागृह तथा श्यामसुंदर अग्रवाल द्वारा पंजाबी में अनूदित 'आखरी सच्च.'*
कहानी संग्रह : *बैसाखियों पर टिके चेहरे, सावजी, जो आग है.*
काव्य संग्रह : *मालवी-हाइकू, शब्दवेधी*
पत्र-संग्रह : *थोड़ा लिखा बहुत समझना. इसके अतिरिक्त प्रौढ़ नवसाक्षरों के लिए छः कथा-कृतियां.*

प्रकाश्य : *श्रीति राशिनकर द्वारा मराठी में अनूदित लघुकथा संग्रह 'डॉ. सतीश दुबे यांची निवडक लघुकथा.'*

संपादन : *दो लघुकथा-संग्रह, एक कहानी संग्रह, तीन कविता-संग्रह. दसेक पत्रिकाओं का संपादन भी.*

सम्मान : *लघुकथा-लेखन क्षेत्र में विशिष्ट उपलब्धियां तथा रचनात्मक कार्यों के लिए नर्मदा प्रसाद खरे तथा भवभूति मिश्र पुरस्कार. प्रौढ़ नवसाक्षरों के लिए कथाकृति 'भरोसे की भैंस' को भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय पुरस्कार. 'जो आग है' कहानी संग्रह को निर्मल पुरस्कार. लघुकथा संग्रह प्रेक्षागृह को डॉ. परमेश्वर गोयल सम्मान. सतत साहित्य-साधना के लिए मध्यप्रदेश लेखक संघ द्वारा 'अक्षर आदित्य' सम्मान.*

कृति-मूल्यांकन : *लघुकथा-संग्रह 'प्रेक्षागृह' तथा 'राजा भी लाचार है' पर देवी अहिल्या वि. वि. इंदौर से लघुशोध प्रबंध.*

संप्रति : *स्वतंत्र लेखन.*

देखता रहा जिसके नीचे रहकर उसने हाड़-तोड़ मेहनत की थी.

बप्पाजी की बीमारी के इलाज में भले ही पैसा कम लगा हो, पर उनकी आत्मा की शांति के लिए डोकरी की इच्छा से बढ़कर लोकलाज ने जितना पैसा अजगर की तरह निगल लिया उसे वापस निकलवाना कोई आसान बात तो थी नहीं. उसके जैसे आदमी के पास था क्या सिवा हाथ-पांव के. किंतु उसे किसी ने गिरवीं रखना तक मुनासिब नहीं समझा. लाचार होकर धरती के दोनों टुकड़े ठाकुर के छोटे बेटे जुझारसिंह की मालकियत में दस हजार पेटे रखना पड़े. उन्हीं दस हजार का जुगाड़ उसे यहां से शहर दौड़ा ले गया.

बड़वाली मां की मन्नत उसे फल गयी और शहर जाने के साथ ही, कुछ ऐसी टिप्पस भिड़ी कि, जिस मकान पर उसे बेलदारी का काम मिला था, उसके बनने पर मकान मालिक ने खुश होकर उसे अपना नौकर बना लिया. बंगले के बाहर का एक छोटा सा कमरा और हजार रुपया महीना. यह ज़रूर था कि दोनों को सुबह से रात तक लगातार कुछ न कुछ काम में जुटे रहना पड़ता. कभी कुछ, कभी कुछ. भैयाजी की जबान कभी बंद नहीं होती, 'भीलू, ये करना, भीलू वो करना.' और भीलू शुरू हो जाता, मानो भीलू आदमी नहीं, गाड़ी का स्टार्टर हो, दबाया कि चला. सेमल की फ़ज़ीहत उससे ज्यादा थी. बीबीजी का घर, किचन, बाथरूम, पानी-सानी सब उसके मत्थे. पर दोनों में पटती बहुत थी. बीबीजी थीं जवान गोरी-चिट्टी, खूबसूरत. ज्यादा खुश दिखने पर सेमल जब बीबीजी को किसी फिल्म की हीरोईन के नाम से संबोधित करती तो उसका चेहरा, फूलकर फैल जाता, और वह कहती- 'एक बार और कह तो...' सेमल के सांवले-सलोने और तीखे नाक-नक्श उसे भी अच्छे लगते. सेमल को इसका अहसास तब होता जब बीबीजी दोपहर में जब तब मुस्कुराकर आदेश देतीं- 'सेमल, आज तो हाथ-पैर बहुत दर्द कर रहे हैं, जरा दबा दे... तू अच्छी लगती है इसलिए कहती हूं, नहीं तो मैं तेरे साब के अलावा किसी को अपना बदन छूने नहीं देती...'

खुशामद, मेहनत या चाहे-अनचाहे काम करके दोनों ने पांच साल बिताये. उन्हें साल नहीं रुपये गिनना थे, जब दस-बारह हजार जमा हो गये. दोनों की आंखों में गांव, घर, खेत खलिहान घूमने लगे. खेत-खलिहान का मालिक होना, भीलू के लिए गर्व का विषय था. उसके टोले में दो-चार और लोग थे, जिनकी जमीन थी पर फिर भी जितनी उसके पास थी, उतनी किसी अन्य के पास नहीं.

'भीलू! क्यों रे भई, कल को ताकने में लगा है ना. अरे पगले, अब तो कल ही कल है. दिवा-बत्ती लगे कित्ती बेर हो गयी मालूम है. उठ, सेमली ने रोटी बना ली है, खा-पी ले फिर सो, थक भी गया होगा...'

अम्मा की आवाज सुनकर भीलू चौंककर खटिया पर उठ बैठा. वह अम्मा की ओर निहारने लगा. इतने बरस में कोई दुलारने वाला मिला ही नहीं सब दुत्कारने वाले, किसी ने ये नहीं कहा कि 'पेले रोटी खा ले,' सबने ये ही कहा - 'पेले काम कर,' अम्मा तो अम्मा है. भीलू अम्मा के दुलार में इतराकर उससे लिपट गया. अम्मा खिल्ल करके हंस पड़ी - 'क्या करे है, जोति देखेगी तो हंसेगी.'

बहुत दिनों चिमनी के उजाले में अपनी छोटी सी रोटी-पानी वाली कोठी में बैठकर वह रोटी खाने बैठा - 'अम्मा इत्ते साल तक तेरे को हमारे बिना बुरा नहीं लगा?'

'बुरा लगाकर, तेरे साथ चली चलती तो ये बाप-दादे का मकान खंडेर हो जाता, बड़े घर वाले को मालूम तो रहा कि डोकरी यां है, नी तो सब जीम-जाम जाते, भील्या. इना गांव में भरापेट का हर आदमी भूखा ज दिखता है.'

भीलू, अम्मां की बातों को उम्र के अनुभव से तौलता रहा. बहुत बरसों बाद भीलू-सेमल को अपनी कोठरी में सोने का मौका मिला. भीलू ने अपनी तरफ पीठ किये सोयी सेमल की करवट बदली तथा पूरा चेहरा अपनी हथेली में लेकर बोला - 'कैसा लग रहा है यां...'

'अपना-घर तो अपना है जी...'

'लगता तेरे को शहर के किसी की याद सता रही है...'

'हां, पर क्या करना.'

'किसकी... अपनी बीबीजी की...'

'नी तुमारे भैयाजी की...' भीलू ने उसकी ओर तेज निग़ाह से घूरा तथा हंसकर बोला, 'ऐसा थप्पड़ दूंगा कि दांत निकल जायेंगे.'

'अच्छा देना तो...' सेमल मुस्कुरा दी.

थोड़ी ही देर में सेमल को तो नींद लग गयी, पर भीलू अपनी उधेड़बुन में खो गया. उसकी निग़ाहें रात के अंधेरे में खेतों पर पहुंच गयीं. सबसे पहले सेमल वाले बड़े खेत पर जाकर रुकीं. खेत की मेड़ पर सेमल का बड़ा सा वृक्ष होने के कारण उसके दादाजी ने उसे सेमल-वाला नाम दिया था, संयोग से बाद में औरत मिली तो वह भी इसी नाम की. वह इसी सेमल के झाड़ के नीचे घंटों बैठा रहता, उसमें खिलते फूल और कपास से भी कोमल रेशों पर प्यार से अंगुलियां फेरना उसे अच्छा लगता.

दूसरा खेत पहले से थोड़ा ही छोटा होगा पर कमाऊ पूत जैसा अधिक माल देने वाला. कुछ भी बो दो, सोना उगलेगा. इसकी मेड़ पर बड़ का वृक्ष आसपास के खेत वाले यहीं दोपहरिया करें, थके हारे आराम करें और पक्षी चहचहायें. इन दो वृक्षों के अलावा पूरे जंगल में खेत ही खेत. भीलू के इन दोनों मेमनों के आसपास बड़े लोगों के घुर्राते हुए नहार जैसे खेत. ऐसे मुंह फाड़ते हैं मानो कच्चा ही चबा जायेंगे. पर बड़वाली मां ने अब तक नहारों से रक्षा करी है तो आगे भी करेगी. वह सुबह ही जाकर गांव बप्पा को

पूरे रुपये चुक्ता मालकियत के कागज़ात ले सबके साथ खेतों पर जायेगा. अभी तो खाली ही पड़े हैं, सोचेगा क्या बोना. पैसे कौड़ी की ज़रूरत पड़ी तो भैयाजी से शहर जाकर ले आयेगा. उन लोगों ने कित्ती बार कहा - 'तकलीफ़ हो तो आ जाना, किसी दूसरे के आगे हाथ मत फैलाना...'

आज़ादी के बाद सीलिंग-एक्ट लागू होने पर गांव बप्पा ने ज़मीन परिवार के सदस्यों के नाम अलग-अलग टुकड़ों में बांट दी थी. नतीज़ा यह हुआ कि, जितने नामों से ज़मीन बंटी थी उतने नामों से परिवार बंट गया. एक दरवाज़े के अंदर, दरवाज़े ही दरवाज़े हो गये.

भीलू को सबसे छोटा-बप्पा जुझारसिंह के दरवाज़े तक पहुंचने में न जाने कितने दरवाज़ों के चौकीदारों का मुकाबला करना पड़ा. उसने बड़वाली मां को दुआएं दीं. - छोटे बप्पा अपनी बैठक में बस आकर बैठे ही थे. भीलू ने परंपरा के अनुसार ड्योढ़ी को मत्था टेकने के बजाय झुककर हाथ से छुआ तथा छोटे बप्पा की चरण-वंदना की.

छोटे बप्पा ने पहले उसे कनखियों से देखा, फिर आंखें फैलाकर बोले - 'भीलू... मैंने ठीक नाम लिया ना.'

'जी, छोटे बप्पा, आप भूल जायेंगे, तो हम गरीबों को कौन याद रखेगा.'

'बात ठीक कहते हो. शहर में रहकर बोलना भी अच्छा सीख आये हो... बोलो सुबे-सुबे कैसे आ गये.'

'छोटे बप्पा, सेमल और बड़वाले को छुड़ाने आया हूं. हिसाब मालूम हो जाये तो पूरे रुपये ले आवूं. बड़ी जोड़-तोड़ करना पड़ी बप्पाजी. बाप-दादों की निशानी है जब तक रख सके उनका साया आशीष देगा...'

'रुपये कमा लाये, अच्छा किया. हम लोगों के पास तो इतने टुकड़े हैं कि संभालना मुश्किल. जिसकी अमानत उसी के पास रहे हम तो यही चाहते हैं. हक्क ले लो और काम धंधा देखो.' कामदार को बुलाने के लिए उन्होंने चौकीदार को बुलवाया. अचानक कुछ याद आने की सलवटें भाल पर उभारीं तथा प्रश्न किया - 'कितने बरस हो गये...?'

'छोटे बप्पा, पांच साल का इकरारनामा था. तीन महीने जादा हो गये.'

'कोई हर्ज़ नहीं. चलता है. तुम जैसे लोगों को जुगाड़ करना आसान थोड़े ही है. वह तो हिम्मत वाले हो जो इतना सब कर लाये.' छोटे बप्पा थोड़ी देर कुछ सोचते रहे फिर बोले - अपने गांव का बजरंगपुर में पटवारी है ना, उसको सब बताकर चिट्ठी लिखा लाओ... आजकल सरकारी कामकाजों का कोई ठिकाना नहीं... जाओ जल्दी निकल जाओ, कहीं वह पटवारी का बच्चा निकल नहीं जाये.'

भीलू ने पहली बार छोटे बप्पा के चेहरे को ठीक से देखा लंबी नाक, बड़ी-बड़ी आंखें, घोड़े जैसा लंबा काला चेहरा, उस पर चेचक के इतने दाग की असली रंग को समझने में मुश्किल हो.

'क्या देख रहा है...' भीलू घुर्राहट सुनकर चौंक गया.

'कुछ नहीं छोटे बप्पा, पटवारी के पास जाने से पहले भगवान जैसे आपके मुख को ध्यान में ला रहा हूं जिससे मेरा काम जल्दी हो जाये...'

छोटे बप्पा ने अपनी सुर्ख आंखों की पुतलियां घुमाकर उसे घूरा - 'लगता है, पांच सालों में ज्यादा ही हवा बदल गयी है.'

'नहीं छोटे बप्पा ऐसा कुछ नहीं. भैयाजी, जिनके यहां मैं काम करता था, उनको बोलते देख कुछ सीख गया.'

'ठीक है, वो वहीं छोड़ आया कि नहीं... अब गांव की तमीज़ और तहज़ीब की बातें यादकर उसी में रह... समझा...'

'जी छोटे बप्पा...'

'चल, अब भाग तो... बहुत टाइम चाट लिया...'

भीलू ने छोटे बप्पा को पहले पीठ देकर एक बार फिर गौर से देखा तथा तेजी से बाहर निकल गया. पूरे गांव को छोड़कर वह कब बजरंगपुर के रास्ते पर आ गया, उसे पता नहीं. उसके कदमों में बहुत तेजी आ गयी थी, मानो वे उसे ज़ल्दी से ज़ल्दी पटवारी की चौखट पर पहुंचाना चाहते हों.

बजरंगपुर में प्रवेश करते ही पहला प्रश्न उठा, पटवारी को कहां ढूंढ़ा जाय? किसी से पता पूछा जाये? पर किससे? बाबूजी जैसे आदमी से जानना ही ठीक रहेगा. वह इधर-उधर ताक झांक कर ही रहा था कि, हाथ में काला-बैग लटकाये आते हुए एक व्यक्ति पर निगाह पड़ी.

'बाबूसाब...'

वह व्यक्ति अचकचाकर रुक गया.

'मुझे कुछ कह रहे हो...?'

'जी साब...'

'बोलो...'

'ये पटवारी साब कहां रहते हैं.'

बाबूजी हंस पड़े - 'बहुत भोले लगते हो. अरे भलेमानस, यह तहसीली ज़गह है यहां पटवारी, मुन्सरिम, अहलकार जुआर के दो थोग मिलते हैं. तुमको कहां का पटवारी चाहिए...'

'जामन्या गांव का...'

'ऐसा बोलो ना. वो खुर्राट मौजीलाल, मुंशी गली में रहता है. चले जाओ, सीधे दायें हाथ की ओर... एक बिजली खंभा है, बस उसी की लाईट में मौजीलाल मिलेगा.' भीलू ने देखा, वह व्यक्ति दांत-निपोर कर, उसे ऐसे देख रहा है जैसे वह कोई शिकार हो.'

'आपकी मेहरबानी बाबूजी.'

'अच्छा! बड़े समझदार लग रहे हो.'

भीलू उसको अनसुना कर, नाक की सीध में फिर तेजी से चल पड़ा. दस मिनिट में ही वह धोती-बंडी पहने अधकचरे बालों वाले एक अधेड़ व्यक्ति के सामने था- 'पटवारी साब से मिलना है.'

'मिलो, मैं ही पटवारी मौजीलाल हूं, कौन से गांव से आये हो...' भीलू ने गाम-नाम के साथ आने का कारण विस्तार से बताया.' अच्छा छोटे बप्पा ने भेजा है... देख, काम हाथ में लेने की सौ रुपये फीस है, तू गरीब है इसलिए पचास दे देना. अंदर आ जा. फोन मिलाकर बप्पा से बात कर लेता हूं.'

भीलू ने सोचा, अच्छा हुआ पैसे लेके निकला, नहीं तो वापस भागना पड़ता. उसने पचास का मुड़ा तुड़ा नोट टेबल पर रख दिया तथा एक तरफ खड़ा हो गया.

'खंभे जैसा खड़ा मत रे एक तरफ जा.'

पटवारीजी ने बप्पा को फोन लगाया, तथा उनकी बातें सुनते रहे. बातें खत्म होने पर पटवारीजी ने भीलू पर निगाह डाली, पचास का नोट बंडी के अंदर वाली जेब में रखा तथा कुर्सी पर बैठकर, आलमारी में से कुछ रजिस्टर निकालने लगे.

'भीलू वल्द भुवान्या, ग्राम जामन्या, तहसील बजरंगपुर.' फुसफुसाते हुए पटवारीजी ने कागज़ पर नोट किया.

'दो खेत हैं तुम्हारे. एक-एक एकड़, दो बिस्वा का. दूसरा-एक एकड़ का.' खेत की मेड़ पर झाड़ भी है ना.

अपनी खेती की पूरी जन्मपत्री सुन भीलू गदगद हो गया. इसको कहते हैं सरकार, जो अपने को नहीं मालूम, उसका रिकॉर्ड यहां.' अरे बोलो दोनों खेतों की मेड़ पर झाड़ हैं ना...?'

भीलू उत्साह और प्रसन्नता से उठकर खड़ा हो गया - हां साब...'

'बैठ जा..बैठ जा..' पटवारीजी ने दूसरा रजिस्टर निकाला तथा पेज पर पेज खोलते हुए, एक ज़गह रुककर, सर खुजाने लगे. भीलू उनके पूरे क्रिया-कलाप को गौर से देख रहा था. 'इस दूसरे खसरे में तो जुझारसिंह के बेटे सूरसिंह का नाम चढ़ा है. कुछ लेन-देन की वज़ह से बिक्री ख़त लिख दिया था.., क्या...?'

'क्या बोल रहे हो साब. कोई बिक्री खत-वत नी लिखा इकरारनामा हुआ था, उसके टेम को तीन-महीने जादा हुए हैं उसका ब्याज भी मैं देने को तैयार हूं.'

'तुम खुद कह रहे हो, तीन-महीने जादा हो गये. कितने टेम से तीन महीने जादा हो गये.'

'पांच बरस...'

'पांच बरस, फिर तो मर गया, भील्या. इतने बरस जो ज़मीन जोतता है उसी की हो जाती है. गांधीजी जैसे बड़े महात्मा हो गये हैं, विनोबाजी. जबसे उन्होंने कहा - ज़मीन किसकी जो जोते उसकी, तबसे यह नियम बन गया, कहीं किसी का कोई उज़र नहीं चलता.' भीलू एकदम भिन्नाकर खड़ा हो गया...' ऐसी की तेसी नेम की, मेरे नाम पर्ची तुम दोगे की नी...'

'अरे... सुन, ये शेर बनना यां नहीं चलता. तू तो एकदम झपट्टा मारने लग गया. ये कोई मेरे घर का कानून है. दूसरे कागज़ और देख लेते हैं... तू ही बता मैं क्या करूं'

'ऐसी की तेसी तेरे रिकॉर्ड की...'

'क्यों रे बलाटे तू मौजीलाल से गाली-गलौच करने लग गया. अब एक लफ़्ज भी बोला तो यहीं पटक के मारूंगा, चल भाग यां से, सीधे से बात कर रहा हूं तो इतरा रहा है. मौजीलाल ने भीलू को धक्के मारकर सड़क पर कर दिया.'

'मेरे खेत मेरे को नहीं मिले तो आग लगा दूंगा...' भीलू लंबे हाथ करता हुआ, सड़क पर से चिल्ला रहा था. कुछ चलते-फिरते लोग कुछ मिनिट ठिठके. आसपास रहवासियों के लिए शायद यह रोज़मर्रा का सिलसिला हो इसलिए किसी ने तमाशबीन बनने में भी रुचि नहीं ली.

बजरंगपुर से जामन्या के रास्ते पर आने के बाद से भीलू तब तक दौड़ लगाता रहा जब तक कि उसने अपने को बड़े घर के दरवाज़े पर खड़ा नहीं पाया. गांव के बीच से दौड़ता हुआ आते देख कुछ अनहोनी समझ गांव के कुछ फुरसती उसके पीछे, 'क्या हो गया' की उत्सुकता मन में लिये सहभागी बन गये थे.

पसीने में तर-बतर भीलू हांफता जा रहा था. सभी दरवाज़ों के चौकीदारों की परवाह किये बिना वह सीधे जुझारसिंह के दरवाज़े पर पहुंच गया.

'छोटे-बप्पा...'

बाहर जाने की मुद्रा में अपने घर के बाहर मैदान में खड़े जुझारसिंह के पैरों पर वह गिर पड़ा. यद्यपि मौजीलाल ने फोन पर पूरे घटनाक्रम से उन्हें सूचित कर दिया था, फिर भी, वे अनजान-भाव चेहरे पर ओढ़कर बोले- 'सीधे खड़ा होकर बता क्या हुआ?'

'छोटे बप्पा, वो पटवारी कहता है कि मेरे खेत सूरसिंह भैया के नाम हो गये...'

'तो मैं क्या कर सकता हूं, ये तो सरकारी कामकाज है, नियम तो नियम है.'

'आपको भगवान ने बहुत दिया है छोटे बप्पा, मुझ गरीब का पेट मत काटिए...'

'यह सब पहले सोचना था, अब कुछ नहीं हो सकता - 'चौकीदार इसे बड़े दरवाज़े से बाहर कर दे, और ध्यान रखना आगे से इधर आने की हिम्मत नहीं करे...'

छोटे बप्पा और भीलू दोनों की आंखें लाल थी, किंतु नशा अलग था. चौकीदार भीलू को धकेलता जा रहा था और वह उन्मादित सा चिल्लाये जा रहा था- 'मेरे खेत खाकर बप्पा तुम अच्छा नहीं कर रहे हो. भगवान तुमको सुखी नहीं रहने देगा... मैं अपने खेत लेके रहूंगा...'

कई लोग उसे रोककर कारण जानना-समझना चाह रहे थे. घर पहुंचकर वह ओटले पर बैठ गया. अम्मां उसके बिना बताये

सब समझ गयी--'भीलू... मेरे को मालूम था, बड़े घर वाले, सांप घराने के हैं, चूहे तक के बिल को हथिया लेना बुरा नहीं समझते हैं. बेटा! दुःख मत कर. बड़वाली मां न्याय करेगी. चल उठ, मुं धो-धा के रोटी खाले. सुबे से निकला था. खायेगा-पीयेगा तो ताकत आयेगी, नी तो इन सांपों से लड़ेगा कैसे? डर मत बड़े घर वाले सांप हैं तो हम नेवले...'

मां के पीठ पर हाथ रखते ही भीलू हिम्मत से सर झकझोरकर खड़ा हो गया. सेमल हाथ पकड़कर उसे अंदर ले गयी. दिलासा दिलाकर, शहर में किये उसके हिम्मतवाले कामों की याद दिलायी तथा हंसकर बोली, 'ऐसे डुगडुगी हो गये... भैयाजी ने क्या कहा था... भूल गये जिसकी हिम्मत गयी, उसकी ज़िंदगी गयी.'

भीलू, मानो जबरदस्त ऊर्जा अपने में महसूस करने लगा. रोटी खाकर बाहर बैठकर भावी योजना बना ही रहा था कि- टोले के कुछ लोग उसके पास आकर बैठ गये. बनवारी भी. बनवारी, याने गांव ही नहीं क्षेत्र का हरिजन नेता.

'भीलू, लगता है बप्पा-घर के पाप को अब हमको धोना पड़ेगा. उनके बहोत सारे ऐहसान हमारे टोले पर हैं. तू चिंता मत कर.' देर रात तक पूरे टोले में कानाफूसी, बैठक तथा हलचल रही.

❐

सूरज मुंह धोकर, यात्रा पर चलने को तैयार खड़ा था उसी की तर्ज पर बलाई-टोले के पंद्रह बीस आदमी और सात-आठ औरतें. थोडी ही देर में इस समूह ने जुलूस की शक्ल ले ली. सबसे आगे काला झंडा लिये बनवारी था. बड़े घर के सामने से नारे लगाता हुआ, यह हुजूम बजरंगपुर की ओर चला-

'सामंतशाही का नाश हो...'

'जुल्म-ज्यादती नहीं चलेगी... नहीं चलेगी.'

गांव के बाहर तक पहुंचते-पहुंचते, बड़े घर की ज्यादतियों के शिकार कुछ और लोग भी सम्मिलित हो गये. बिना यह जाने की आगे कहां जाना है.

कांकड़ से आगे यह जुलूस नहीं पहुंचा होगा कि पीछे से बड़े कारिंदे भवानीसिंह की मोटर सायकिल दनदनाती हुई साइड से निकलकर सामने खड़ी हो गयी. वीरप्पन जैसी बड़ी-बड़ी मूंछें, राजपूती चमक वाला बप्पा-परिवार की दास्तां के कारण कुछ हिस्सों से स्याह चेहरा- 'भीलू! बप्पा ने तुम लोगों को बुलाया है और कहा है, गांव का कांकड़ लांघा तो अच्छा नहीं होगा.' भवानी की आंखें उसकी खीज और क्रोध के तेवर बता रही थीं.

बनवारी तथा भीलू ने एक दूसरे की तरफ देखा-

'भीलू आगे जाता है, पीछे नहीं, छोटे-बप्पा को बोल देना.'

'छोटे नहीं बड़े बप्पा ने बुलाया है...'

'बप्पा कोई भी हो, सबके लिए एक ज़वाब है...' बनवारी तथा भीलू दोनों एक स्वर बोले.

'अच्छा-' भवानीसिंह की गुस्से से चीख निकलकर कुछ कहना चाह रही थी, पर उसने अपने आपको शांत किया. उसे मालूम था, बप्पा को यह निर्णय बजरंगपुर से संपर्क करने के बाद लेना पड़ा था. मंत्रीजी के दौरे के कारण पूरा सरकारी अमला मौजूद था. बात मंत्रीजी तक गयी तो कई छिलके निकल जायेंगे. दो एकड़ ज़मीन के बदले कई एकड़ से हाथ धोना पड़ेगा. समाचार पत्रों में ख़बर तथा चर्चा के कारण होने वाली कुचर्चा, बदनामी होगी. सो अलग. जमाना जोर नहीं ज़बान का है. इसे छोटे बप्पा के बजाय बड़े जानते थे.

भवानी, गाड़ी वापस पलटाता उसके पूर्व ही जीप की आवाज़ आयी. सबने पलटकर देखा, बड़े बप्पा, जुझारसिंह बप्पा के साथ हैं. बड़े बप्पा भवानीसिंह के पास आकर खड़े हो गये- 'मुझे मालूम था, तुम लोग वापस नहीं आओगे. बढ़े हुए कदम पीछे नहीं हटना चाहिए मुझे खुशी है कि, मेरे गांव के तुम जैसे लोगों में ज़माने के हिसाब से आगे बढ़ने की तमन्ना है.'

उन्होंने भीलू की तरफ देखा, इच्छा तो हुई कि स्साले को कच्चा चबा जाये. जिसके बाप-दादों ने उनके घर की जूतियां उठायीं, गंदगी साफ की, उसी के सामने, उन्हें समझौते के लिए खड़ा होना पड़ रहा है. उन्होंने भीलू की पीठ पर हाथ रखा- 'तू भवान्या का बेटा है ना, तुझे मालूम नहीं, तेरा बाप मेरी कित्ती इज्जत करता था... तेने मेरे पास आना था. जुझार से सब किस्सा मेरे को मालूम हो गया. बनवारी ये काला झंडा नीचे कर. जब देखो तब झंडा खड़ा कर देता है. गांव की इज्जत का विचार है तेरे को.'

'बप्पा कोई दगा हुआ तो...' बनवारी ने झंडा ऊंचा करते हुए प्रश्न किया.

'तुम लोग हो ही ऐसे, बाप पर भी भरोसा नहीं करने वाले.' सुअर के सामने मीठा रख दो, पर वो गंदगी ही पसंद करेगा.' बड़े बप्पा ने आग उगलते हुए भड़ास निकाली.

'जुझार, भीलू से रुपये लेकर, इकरारनामा वापस कर दो, और आगे से इनके साथ ऐसा ये लेनदेन बंद करो...'

भीलू बड़ी असमंजस की स्थिति में बड़े बप्पा की ओर देख रहा था- 'पर बप्पाजी, पटवारी ने तो सरकारी कागज़ों में...'

'ये पटवारी, तहसीलदार, कलेक्टर सब भ्रष्ट हैं, रिश्वतखोर और बदनामी हम लोगों की होती है. तेरा कुछ नहीं होगा... तेरे बाप को मेरे पे विश्वास था. तेने भी रखना चाहिए...' बड़े बप्पा ने तेज आंखों से उसे घूरा फिर पूरे जुलूस को और जीप में जाकर बैठ गये. जीप उन पर धूल उड़ाती हुई तेजी से गांव की ओर लौट गयी, उसके पीछे हाथ नीचे किये पूरा हुजूम.

७६६ सुदामा नगर, इंदौर (म. प्र.) ४५२००९

कहानी

सवाल-दर-सवाल

वाश बेसिन से गिरते पानी की आवाज़ से घबड़ा कर दुखन महतो चीख पड़ा...

पानी... पानी... पानी... भागो रे भागो... परान गया रे बप्पा... कोई बचावो रे... बचावो... भगीरथवा कहां है रे... भाग जल्दी भाग...

ड्यूटी पर तैनात डॉक्टर, नर्स भागे-भागे बेड नं. १० के पास आये...

डरो नहीं शांत रहो... यहां कहीं पानी नहीं है... यह तो नल का पानी है... इससे कुछ नहीं होगा...

थर... थर कांपता खौफ़जदा दुखन भयभीत... विस्फारित नेत्रों से नर्स और डॉक्टर को बारी-बारी से ताककर तकिये में मुंह गड़ाकर गुड़ी-मुड़ी हो फफक पड़ा.

नर्स ने तत्काल कॉम्पोज की सुई लगायी और समझा बुझाकर उसे सुला दिया.

शाम का झुटपुटा था... पंछी अपने-अपने घोंसलों में बसेरा ले चुके थे... चारों ओर मनहूस चुप्पी फैली हुई थी... अस्पताल की दवाइयों की तीखी गंध हवा में घुली हुई थी.

दुखन गहरी निंद्रा से जागा... चारों ओर नज़र दौड़ाई, मरीजों के आह-कराह के बीच ड्यूटी नर्स किसी को दवा, किसी को सुई दे रही थी... आंय बांय बकने पर खीझकर मरीजों को झिड़क रही थी.

'मुंह बंद करके चुपचाप बेड पर पड़े रहो... सवेरे से एक ही बात समझाते-समझाते दिमाग ख़राब हो गया... दवा क्या कोई जादू की पुड़िया है कि एक खुराक में बीमारी छूमंतर हो जायेगी... जाने कहां-कहां से रंगरूट चले आते हैं.

दुखन की पीठ और कमर में पीड़ा टीस मार रही थी... मगर नर्स के तीखे तेवर को देखकर वह चुप लगा गया. दर्द की बात मन से झटक कर उसने चित्त लेटकर छत पर आंखें गड़ा दीं, और लहूलुहान अतीत के खूनी गलियारों में भटकने लगा.

कित्ता हुलास से पत्नी जुगनी रात की बासी लिट्टी और चाय का गिलास बाप बेटे के सामने धरकर अपना गिलास लाकर चाय सुड़कने लगी थी...

गिलास खाली करके थोड़ा तिनकर अपने देह पर की लुगरी साड़ी दिखाकर खोबसन देने लगी...

'बाप बेटा दुनो सुनों... अबर फुगआ में हम बढ़िया लुग्गा लेबई...'

बेटा भगीरथ पट से मां का पच्छ लेते हुए बोला... 'साचहूं मइया के साड़ी एकदमे फट गैइल है... फगुआ में हम खपसूरत लुग्गा और जंफर ज़रूरे लेबई...'

'हमरा खातिर एगो नया लुग्गा...,' 'हमरा खातिर लाल चूड़ी....' 'हमारा खातिर सिलिक वाला फीता...' कमली, बिमली और किसनी अपनी-अपनी फरमाइश लेके कूद आयी थीं... 'सबुरकर सब खातिर सब चीज अतई...'

कनक लता

जुगनी ने आंख मटकाते हुए ताना मारा था, 'दू दू गो परानी कमाते हो, बाकी टेंट से पइसा निकलबे नहीं करते हो...'

'घड़ी-घड़ी टेंट से पइसा निकालेंगे त कमली, बिमली और किसनी के बियाह खातिर पइसा कहां से आयेगा? भगीरथवा के सादी बियाह में कर-कुटुम के खातिर बाद कइसे होगा?' उसने पट्ट से बोलकर जुगनी को चुप कर दिया.

कलेवा खाकर बाप बेटा दूनों मुंह में गुटका रखके चल दिये खदान की तरफ.

खदान के भीतर पहुंचकर भगीरथ और वह दोनों काम के लिए अलग-अलग दिशा की ओर मुड़ गये थे. भगतू और छोटे मियां के साथ सात नंबर सीम के, पांच नंबर गोलाई पर माइनिंग सरदार जगमोहन गोप के पास बैठकर बतकही कर रहा था. पांच नंबर फेस में ब्लास्टिंग हुआ और उसके साथे साथ भयंकर दईत के गरजन के जैसा कानफाड़ू आवाज़ होने लगी... तेज सीतल बयार चलने लगी... देह में सिहरन होने लगी... भय से कलेजा कांपने लगा... 'बुझाता है कुच्छो अनहोनी होवेवाला है', भगतू ने थरथराते हुए कहा. चारों जन धांय-धांय उठे और बकबका कर इधर-उधर ताकने लगे. माइनिंग सरदार सात नंबर सीम के तीन नंबर और चार नंबर फेस की ओर भागे...

अथाह पानी का समुद्र हहराता, गरजता उन लोगों की तरफ बढ़ा आ रहा था...

पलक झपकते प्रलय का दृश्य उपस्थित हो गया.

'भागो रे भागो बुझाता है डैम टूट गया...' सरदार चिल्लाया.

जो जहां था वहां से गिरते पड़ते उसने भागना, दौड़ना शुरू कर दिया.

बचावो रे... मरे रे... ई का हुआ रे बप्पा... भागो... भागो... बौखलाये, पगलाये लोगों की चीख पुकार और हाहाकार की आवाज़ मिनट भर में पानी के हहाते समुद्र में डूब गयी.

साक्षात मौत खूनी पंजा बढ़ाये जबर आंधी तूफान की तरह बढ़ती चली आयी...

'भगीरथवा रे... कहां है रे बचवा...' वह हाथ पांव मारता अपने इकलौते बेटे को खोजने लगा... जिस रास्ते भाग रहा था, उधर ही पानी... बस हर ओर पानी का ज़बरदस्त बहाव. घुप्प अंधेरे में वह आगे बढ़ता गया... एकाएक उसके हाथ में एक मोटा केबुल पकड़ा गया... वह तनिक थिर हुआ था, कि पानी के जबरदस्त झोंके ने अपने राक्षसी हाथ से उठाकर उसे एक ज़गह पटक दिया...

होश हवास थोड़ा दुरूस्त होने पर उसने देखा यह एक बंद सीम (एअर पॉकेट) था. अंधेरे में हाथ से तलाशता हुआ वह आगे बढ़ता गया, अचानक पांव के नीचे पथरीली ज़मीन का अहसास हुआ... तीन चार फीट की सूखी ज़गह थी...

'आंय... हम बच गये... पानी में डूबे नहीं? धन्न महावीर गोसाई... आज सच्छात मौत के मुंह से बाहर खींच लाये... बाकी भगीरथवा? ओकर का हाल है... कहां है... सही सलामत है कि नहीं...' कलेजा केला के पत्ते जैसा कांपने, थरथराने लगा...

डरते-डरते चारों ओर हाथ से टटोलने लगा... कहीं कुच्छो हाथ नहीं लगा... वह बुक्का फाड़कर रोने लगा... चिल्लाने लगा...

रुलाई थमी तो फिर हाथ से चारों ओर टटोलने लगा... एक टूटा-फूटा ड्रम हाथ से टकराया... साइत हम बच जायेंगे... लगा धांय धांय, ढम ढम, ढनाक ड्रम पीटने और चिल्लाने...

'कोई है... हमको बचाओ... हम इहां पड़े हैं बचाओ... बचाओ... बचाओ...'

उसकी आवाज़ घहर घहर, गड़गड़ाते पानी के जोरदार शोर में डूब गयी...

'हाय रे... तकदीर बुझाता है अइसही हम भूखे, पियासे मर जायेंगे. ना कहीं आदमी, ना आदमजात कौन सुनेगा हमारा चिल्लाना ?' रोते हुए अपने आपसे उसने कहा.

कनस्तर पीटते-पीटते हाथ छिल गये... ज़गह-ज़गह से लहू टपकने लगा... मगर आवाज़ सुनकर कोई उसको बचाने नहीं आया. पानी के हाहाकार में शायद आवाज़ बाहर नहीं जा पाती थी...

वह थक हारकर फिर रोने लगा... जीवन की कोई आस नहीं रह गयी... कंठ सूख रहा था... जीभ ऐंठ रही थी... एक चुल्लू पानी के लिए रोआं रोआं तरस रहा था... क्या करें? कहां जायें? सोचते हुए फिर उसने घुप्प अंधकार में हाथ से इधर-उधर टटोलना शुरू किया.

फच्च... एकाएक कोयले के गंदे पानी के गढ़े में हाथ पहुंचा...

दन्न... दन्न... चुल्लू-चुल्लू पानी मुंह में डालता गया... कंठ तर हुआ और मिज़ाज़ थोड़ा दुरूस्त हुआ. कंठ तर होते ही फिर जोर-जोर से चिल्लाना शुरू किया...

जन्म एवं शिक्षा बिहार

लेखन : *डेढ़ दशक से लेखन में संलग्न. प्रायः सभी विशिष्ट पत्र पत्रिकाओं में कहानियां प्रकाशित. लेखन के अतिरिक्त चित्रकला एवं समाज सेवा के कार्यों में अत्यधिक रुचि. नारी शोषण के विरुद्ध लेखन (कहानी, कविता एवं आलेख) के माध्यम से सतत आवाज उठने का अनवरत प्रयास.*

प्रकाशन : *अब तक सात पुस्तकें, 'दो हिस्सों में बंटी मैं,' 'गांधारी ने आंखें खोलीं,' 'ज़ख्मों के दरख्त,' 'प्रतिशोध,' 'यादों का कारवां,' 'बोन्साई,' 'तृष्णा' (सभी कहानी संग्रह) प्रकाशित. आठवीं पुस्तक 'अग्नि परीक्षा' (उपन्यास) एवं दो कहानी संग्रह प्रकाशनाधीन. अंग्रेजी में अनुदित कविताएं अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका 'पोएट' में प्रकाशित.*

सम्मान : *धनबाद जिला हिंदी साहित्य विकास परिषद द्वारा कहानी लेखन विधा के लिए 'पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी' पुरस्कार से सम्मानित. दिल्ली की साहित्यिक सांस्कृतिक संस्था. साहित्य कला भारती की ओर से साहित्य भारती सम्मान प्रदान किया गया.*

अन्य : *एशिया पेसिफिक 'हू इज हू' में नाम दर्ज. भारत सरकार के वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय की हिंदी सलाहकार समिति की सदस्या. भारतीय परिस्थिनिकी एवं पर्यावरण संस्थान द्वारा राष्ट्रीय हिंदी सेवा सहस्राब्दी सम्मान. राधाकृष्ण पुरस्कार से सम्मानित.*

'कोई है... हम इहां पानी में फंसे हैं... हमको बचावो...'

समय बीतता गया... कोई बचाने के लिए नहीं आया.

'बुझाता है भूखे प्यासे इस नरक में ही परान तियागना पड़ेगा...' वह अवरुद्ध कंठ से बुड़बुड़ाया. रोते कलपते लगा दुनिया जहान के देवता पितर को गोहराने...

'पत्ता नहीं भगीरथवा ठीक-ठीक बाहर निकल गया कि नहीं... कहीं उहो पानी में फंस न गया हो?' सोचकर कलेजा कांप गया.

भयंकर गर्मी में बदन सीझ रहा था...

'हाय देव इ केह पाप के फल दिये... अइसे तड़पा-तड़पा के जान मत लो... दया करो... भगमान...'

हर घड़ी रोना... चिल्लाना... और थककर सो जाना. यही दिनचर्या थी.

सात दिन, सात रातें बीत गयीं... समय का कोई भान न था. कमज़ोर शरीर पीपल के पत्ते सा थरथरा रहा था... उसने जीवन की आशा त्याग दी थी...

एकाएक दो चार लोगों के फुसफुसाने, बतियाने की आवाज़ आयी... वह आश्चर्य से उछला और दम लगाकर चीखा...

'कोई बचावो रे... हम इहां मर रहे हैं...'

टॉर्च की तेज रोशनी में वह सिर से पैर तक नहा गया...

पल भर रेस्क्यू टीम वाले भौंचक उसे ताकते रहे...

कहीं भूत परेत तो नहीं... सात दिन बाद ज़िंदा आदमी निकलना, घोर अचरज...

कुछ आदमियों ने आगे बढ़कर उसे संभाला...

अधमरा दुखन रेस्क्यू टीम के लोगों की बाहों में बेहोश होकर झूल गया.

उसे पता नहीं कितनी देर बेहोश रहा... लोगों ने कैसे उसे खदान से बाहर निकाला... वह कैसे अस्पताल पहुंचा. जब होश आया तो उसने अपने को डॉक्टर और नर्सों से घिरा हुआ पाया.

'हम सांचे ज़िंदा बच गये? मरे नहीं...' वह आश्चर्य से अपने शरीर को हाथों से छूकर बोला.

डॉक्टर ने तसल्ली दी, 'तुम ज़िंदा बच गये हो... तभी न हम लोगों से बात कर रहे हो.' थोड़ी देर में अख़बार वाले, प्रबंधन के अधिकारीगण, नेता दुखन के दोस्त महिम और तमाशबीनों की भीड़ लग गयी.

डॉक्टर और ड्यूटी पर तैनात लोगों की मदद से तत्काल भीड़ हटाई गयी.

वह होश में आ गया, यह ख़बर सुनते ही जुगनी भागी आयी...

'हम्मर रजवा गे...' कहकर वह भोंकार फारकर रोते हुए उससे लिपट गयी.

'हां... हां... क्या कर रही हो... यह अस्पताल है, यहां हल्ला-गुल्ला करना मना है...' समझा बुझा कर लोगों ने उसे चुप कराया.

'भगीरथवा कहां है...?'

'भगीरथवा ने बचलैंगे मइया...' छाती पर दुहत्थड़ मारकर जुगनी चित्कार कर उठी.

दुखन को लगा जैसे धरती-आसमान घूम गया... वह जिबह किये जा रहे बकरे की तरह दर्दनाक चीख के साथ डकराया...

'हाय बप्पा इ का हुआ?'

'हाय मइया इ का हुआ?'

'हम्मर जवान जुहान कमासुत बेटवा...'

अस्पताल का सारा स्टाफ इस दर्दनाक दृश्य को देखकर हिल गया...

'ऐसा अन्याय भगवान दुश्मन के साथ न करें.'

लोगों ने दुखन और जुगनी को समझाया, 'करम का लेखा किसके मेटे मिटा है? होनी के आगे आदमी की क्या औक़ात?' जीवन की नश्वरता के विषय में बताकर धीरज धरने की सीख देकर सबने दोनों को चुप कराया.

दुखन ने अभी मुश्किल से अपने को संभाला था कि दो बेड बाद ही मरीजा कुंहरते बड़बड़ाई...

'हे भगमान इ का हुआ... रजवा तू कब लौटके घरवा अइभो.'

हाय राम इ त रमरतिया भौजी के आवाज़ बुझाता है... दुखन ने तड़पकर कहा.

कोई न बचलौ... खदान हत्यारा सबके खा गेलइ... जुगनी ने रोकर बताया कि उसके सिवाय खदान से अभी तक कोई ज़िंदा नहीं निकला... और किसी के ज़िंदा निकलने की कोई आशा नहीं है.

ज़िंदा लोगों को जलसमाधि देनेवाली खदान को घेरे, बेकाबू होती भीड़ प्रबंधन के खिलाफ आग उगल रही थी.

'हत्यारों को फांसी पर चढ़ाओ... उत्पादन लक्ष्य पूरा करने की जल्दबाजी में यह हादसा हुआ है.'

'खदान में काम करनेवाले मजदूरों की सुरक्षा की किसी को परवाह नहीं है... सब खूनी हैं... हत्यारे हैं...'

खदान के आसपास रेस्क्यू टीम, खदान में फंसे मलकट्टों के रोते बिलखते नाते रिश्तेदार, अख़बार नबीस, छुटभैये नेता, उपायुक्त, पुलिस अधीक्षक... सतर्क पुलिस फोर्स... की भीड़ जमा थी.

दुर्घटना के चार दिन बाद से मलकट्टों की फूली हुई लाशें निकलने लगीं...

ज्यों-ज्यों समय बीत रहा था... लाश को पहचानना मुश्किल होता जा रहा था. हेड बत्ती या जूते से शव की शिनाख्त

की जा रही थी. ऐसा हृदयविदारक दृश्य देखकर दुर्घटनाग्रस्त मलकट्टों के नाते रिश्तेदार विक्षिप्तों की तरह पत्थर पर सिर पटक रहे थे... मुक्का-मुक्का कलेजा कूट रहे थे...

अस्पताल में पड़ा दुखन शरीर में प्राण रहते अपने को शव सरीखा महसूस कर रहा था... बर्र के छत्तों से निकले हुए बर्र की तरह पुरानी बातें दिमाग में डंक मार रही थीं.

दुर्घटना के हफ्ता भर पहले से खदान के सात नंबर सीम में कोयले की दीवार से पानी रिस रहा था. मजदूरों ने परियोजना अधिकारी, सेफ्टी ऑफीसर और तमाम बड़े अधिकारियों के अलावा डी. जी. एम. एस. को भी इस बात की सूचना दी थी.

मगर उनकी बातों पर किसी ने कान नहीं दिया. हत्यारों ने खतरे की सूचना पाकर भी काम जारी रखने का हुक्म सुना दिया.

बेबस लाचार... हुक्म से बंधे मजदूर काम करते रहे, और एक दिन अथाह पानी में जलसमाधि लगाकर खत्म हो गये... सबके बाल-बच्चे... बीबी... बूढ़े मां बाप अनाथ हो गये... जीते जी उनका जीवन नर्क बन गया.

अस्पताल के बेड पर पड़ा दुखन तरह-तरह की ख़बरें सुन रहा था... खून मवाद से लिथड़ी भयानक ख़ौफनाक ख़बरें उसके कानों में बर्छी घुसेड़ जातीं और वह हलाल किये जा रहे बकरे की तरह डकरा उठता.

'उत्पादन लक्ष्य पूरा करने की जल्दबाजी में खदान हादसा हुआ...'

'प्रबंधन समय पर चेत जाती तो इतने बड़े हादसे को टाला जा सकता था...' जितने मुंह... उतनी बातें...

'उग्र भीड़ के तीखे तेवर को देखकर दिन में लाश न निकाल कर रात के सन्नाटे में लाशें निकाली गयीं...'

कलेजों को चीरनेवाली ये ख़बरें सुनकर दुखन परकटे पंछी की तरह तड़प उठा. 'इ आदमी हैं... ससुरे की राच्छस...'

उसके दिमाग में प्रश्नों का भयंकर तूफान उठ खड़ा हुआ.

'महल दुमहला में रहनेवाले आफिसर ससुर... हत्यारे कब बूझेंगे कि गरीबन के हिया में भी कुच्छो अरमान होता है...?'

'आदमी को कीरा, चिउंटी समझने वाले ऑफिसरन के करेजा... में कब दया-माया जागेगा?'

'जीते-जागते आदमी को मौत के कुआं में झोंकने का खूनी खेल कब बंद होगा... कब?'

फन फैलाये विषधर जैसे हजार ज़हरीले प्रश्न कलेजे को छलनी कर रहे थे, और ज़ख्मी कलेजे से रक्त की धार आंसू की बूंद बनकर अनवरत आंखों से झर रही थी...

झर... झर... झर...

'श्रेयस,' चंद्रविहार कॉलोनी,
बरवा रोड, धनबाद - ८२६ ००१

रीते रह गये क्षण

✍ वर्षा जतकर

रात के पहाड़ तले
दब गये दिन
सिवा एक रीतेपन के
कुछ न रहा बाकी
मिट गया हर वह निशान
जिसे हमने
छोड़ा था पिछली यात्रा में
ढूंढ़ा जब खुद को
सपनों की
राख तले दबा पाया
जैसे कोई एक कली
खिलने से पहले मुरझा गयी,
एक घर बनने से पहले ढह गया
अब हर क्षण
खोज रही हूं
वह घर
जहां सहेज सकूं
तरसता मन -
डूबे हुए दिन -
रीते रह गये क्षण.

अहसास

मेरे आंसुओं की नमी में
बरसात की बूंदें
समायी हुई हैं
मेरी थरथराती धड़कनों में
सुन सकते हो तुम
बादलों की गड़गड़ाहट
और मेरे
समर्पण की अग्नितीव्रता में
चमक मिलेगी तुम्हें
बिजली की
पक्षियों का कलरव
सुनायी देगा तुम्हें
मेरे विचारों की आवाजाही में
महसूस कर सकते हो तुम
अपने भीतर
प्रकृति का संपूर्ण उल्लास
जब - होती हूं पास तुम्हारे.

१२/१, ग्रेसिम स्टॉफ कॉलोनी,
बिरलाग्राम, नागदा ४५६ ३३१

दरार

रेशम रात के वक़्त घर पहुंचा था और उसे देखकर उसकी बीवी बचनी हैरान-सी हो गयी थी - 'इस समय ?' उसने पूछा था.

'हां S S.' रेशम ने भी हैरानी से उत्तर दिया था. उसे बचनी की हैरानी पर हैरानी हुई थी - 'मेरी ज़नानी हैरान क्यों हुई ?' और उसने ज़ीरो के बल्ब की मामूली सी रोशनी में बचनी के चेहरे को घूरा था. वह चेहरा कई रंग बदल रहा था... मगर रेशम के लिए यह निश्चित था कि वह चेहरा प्रसन्न अवस्था में नहीं बल्कि पीतवर्ण हो गया दिखता था, जैसे बचनी के शरीर में खून ही न रहा हो... जबकि उसे प्रसन्न होना चाहिए था...

'कितनी बलवती नारी थी.' रेशम ने सोचा - 'और अब ?' और उसने फिर एक बार पैनी दृष्टि से बीवी को देखा.

घर में बचनी और उसके दो बच्चे, उसके साथ रहते थे. बड़ी बेटी पाशो दस वर्ष की हो गयी थी और छोटा बेटा मोहना छठे वर्ष में था. छुट्टियों के कारण अब वे ननिहाल गये हुए थे.

'और बच्चे ?' रेशम ने पूछा तो बचनी ने बताया - 'ननिहाल चले गये हैं... कल ही..'

'पर क्यों ?'

'फिर क्या हुआ ?'

'और तू अकेली ?'

'तब क्या है ?'

'मगर... फिर भी...?'

'मुझे कोई उठा ले जायेगा ?' बचनी ने कहा तो रेशम ने फिर बीवी को देखा, सोचा कहे - 'अभी तेरा बिगड़ा ही क्या है.' मगर उसने कुछ कहा नहीं...

यह आश्चर्य की बात ही थी कि अपने सफर के दौरान रेशम का ध्यान घर में नहीं रहता था, क्योंकि अगर वह घर के बारे में सोचता तो उसका मन बेचैन हो जाता था. इसलिए वह घर के बारे में नहीं सोचता था. घर के बारे में न सोचना उसकी मजबूरी थी... उससे गाड़ी नहीं चलती थी. हां, बच्चों का ध्यान उसे अवश्य रहता था. जब कभी वह लोगों को देखता कि अपने बच्चों के साथ चले जा रहे हैं तो क्षण भर के लिए उन बच्चों के चेहरे उसके अपने बच्चों के चेहरे बन जाते थे और वह खुद बच्चों को लेकर कहीं जा रहा नज़र आता था.

उस दृश्य में से प्रायः बचनी गायब होती थी... क्योंकि वह हमेशा पति से दुःखी ही रहती थी...

उसे याद नहीं था कि वह कितने दिनों के बाद घर आया था. इसलिए उसके मन में यह बात भी थी कि उसकी घरवाली उसकी इस आदत की वज़ह से दुःखी रहती थी. हालांकि यह कोई आदत नहीं, बल्कि उसके धंधे की मजबूरी थी. जिस ट्रान्सपोर्ट कंपनी में वह नौकरी करता था, उसकी देश भर में ब्रांचें थी. वह अमृतसर से माल लेकर बंबई (मुंबई) को जाता तो वहां से उसे इंदौर भेज दिया जाता, और फिर मद्रास, भुवनेश्वर, कोलकाता...

जसवंत सिंह विरदी

इस खूबसूरत देश को वह एक लंबी सड़क के रूप में ही देखता था- 'मैं हूं, गाड़ी है और सड़क...'

'और यह बचनी तो कभी घर से चल कर दिल्ली तक भी नहीं गयी... यह देश की लंबी सड़कों पर मुझे कैसे देख सकती है.'

रेशम ने फिर बचनी को घूरा. अब तो वह उतनी रूपसी नहीं रही थी, पर कभी उसके भी दिन थे. उसे देखकर तो उड़ते हुए पक्षी भी मूर्छित हो जाते थे. और पानी भी नहीं मांगते थे.

बचनी ने पति से पूछा -'इस समय किधर से ?'

'जम्मू जा रहा था.' रेशम ने कहा - 'पर जी. टी. रोड पर गाड़ी खराब हो गयी...'

'क्यों ?'

'कहती थी- बचनी को मिले बगैर नहीं जाऊंगी..'

'फिर साथ लाया है ?'

'नहीं... खराब थी...' फिर उसने बचनी से पूछा -'और तू ?'

'मैं ठीक हूं...' और उसने हंसने की कोशिश की, पर जब उसने देखा कि पति बिल्कुल सिल पत्थर सा खड़ा है तो वह भी चुप कर गयी, बल्कि पूरी तरह सिल पत्थर. तनाव भरपूर.. जैसे अभी ही विस्फोट हो जायेगा. पति ने पूछा - 'मैं कहता हूं मुझे देख के खुश नहीं हुई ?'

'नहीं..'

'क्यों ?'

'गाड़ी के पास जायेगा...'

'कैसे जाना ?'

'तेरा कोई पता नहीं...'

'गाड़ी के पास लोग हैं, रेशम ने कहा तो बचनी ने फौरन पूछा - 'फिर रोटी ?'

'खाऊंगा... और ?'

'अच्छा मुंह हाथ धो ले...'

'क्या ज़रूरी है ?'

'तेरी मर्ज़ी है...'

'अच्छा...'

मगर वह बैठा रहा, थक गया था, क्योंकि निरंतर गाड़ी चलाता हुआ कोलकाता से आया था, शिथल हो चुका था, पर उसके मन में यह बात बिल्कुल नहीं थी कि वह अपने घर भी जायेगा... और ? यह तो गाड़ी खराब हो जाने के कारण ही वह वक़्त निकाल सका था...

'सुबह आ जायेगा ?' ट्रक में उसके साथ चलने वालों ने पूछा तो वह घबरा गया था - 'क्या मतलब है तुम्हारा ?'

'कहीं घरवाली ?'

'घरवाली... क्या ?'

'आने ही न दे...'

रेशम हंस दिया था - 'अब वे दिन नहीं रहे...'

'क्यों ?' साथियों ने पूछा तो वह मुश्किल से कह पाया था -'बस नहीं रहे... दिनों की मर्ज़ी...'

बचनी पति को देखे जा रही थी कि वह और क्या बात करेगा ?

पति कुछ भी कहे बगैर गुसलखाने में चला गया तो बचनी देखने लगी - कोई सब्ज़ी है कि नहीं ?

बच्चे घर में थे तो उनकी वज़ह से खाना बनाने का काम ज़रूरी हो जाता था, मगर अकेली तो वह अचार से भी खा लेती थी अथवा घी में शक्कर डालकर... रूखी सूखी भी... मगर पति घर आया हो तो ? कुछ न कुछ तो खाने को होना चाहिए... आखिर तो पति था... मुझे क्या पता था कि यह अचानक ही रात के समय आ निकलेगा.

फिर उसने और बातें भी सोचीं, जो कल्पित थीं मगर ख़तरनाक हो सकती थीं...

'अब अगर कोई रिश्तेदार ही आया हुआ होता तो कितना फसाद करता यह शक्की मर्द! जबकि रोशन घर में कोई भी आ सकता है... ' और यह सच है कि घर में हर तीसरे दिन कोई न कोई आता ही रहता था. अब उसके मां बाप नहीं रहे, मगर भाई जीवित थे और खुशहाल भी थे. उनमें से कोई न कोई हर सप्ताह अथवा दस-बारह दिनों के बाद ज़रूर देखने आता कि बहन कैसी है. और घर भर जाता. हर कोई सोचता था - 'कहीं हमारी बहन किसी चीज़ के लिए दुःखी न हो...'

७ मई १९३४, जालंधर

एम. ए. (हिंदी-१९६५, पंजाबी-१९७१)

लेखन : *वरिष्ठ रचनाकार. उपन्यासकार एवं नाट्य लेखक. सन १९५५ से निरंतर कहानी-लेखन. तीन-सौ से अधिक कहानियों का सृजन.*

प्रकाशन : *५ उपन्यास और १० कहानी संग्रह प्रकाशित. 'नया चेहरा' (१९६९) : भाषा विभाग पंजाब द्वारा पुरस्कृत. एवं 'विरदी की प्रतिनिधि कहानियां' (१९७८) : ४१ कहानियों का संग्रह 'भाषा विभाग पंजाब' द्वारा प्रकाशित.*

अन्य : *भारत की नदियों पर १०० से अधिक शब्दचित्र अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित. 'पंजाब केसरी' में अनेक महापुरुषों के शब्दचित्र प्रकाशित.*

संप्रति : *सरकारी कॉलेज कपूरथला तथा होशियारपुर (पंजाब) में प्राध्यापक रहे. १९९२ में अवकाश प्राप्त.*

अगर कोई भाभी आती तो जाते वक़्त कहती - 'हम तेरे लिए सब कुछ ही कर सकते हैं, मगर तुम्हें सुख देना, यह हमारे वश में नहीं है, यह काम तेरे पति का है...' उस समय बचनी रोने लगती और कई दिनों तक मां बाप को याद करके दीवारों से बातें करती, अपने नसीबों की शिकायत करती! सोचती - 'मेरे बाप की तरफ से कोई न कोई आकर मेरे घाव छील जाता है.'

मगर वह एक सप्ताह के बाद फिर अपनों की प्रतीक्षा कर रही होती...

'मेरे मां बाप के घर से कोई नहीं आया... ठीक हों !' फिर वह अनेक प्रकार की बुरी बातें सोचती... कोई आ जाता तो गले लग कर रोती - 'अब तुम ही मेरे मां बाप हो... जहान में मेरा और कोई नहीं रहा...'

भाई अथवा भाभी, जो कोई भी आया हुआ होता, हैरानी से पूछता - 'तू तो कहती थी अकेली जून काट लेगी...'

'हां काट लूंगी...'

'और अब ?'

'आपके सहारे से ही कटेगी ज़िंदगी...'

'अच्छा, घबरा मत...'

'आप जल्दी क्यों नहीं आते... ?'

'अच्छा, आयेंगे.'

रेशम हाथ-मुंह धोकर लौटा तो बचनी ने कहा - 'सब्ज़ी कोई नहीं, कहे तो अंडा बना दूं...'

रेशम ने बेपरवाही से कहा - 'कुछ भी कर, मैंने क्या कहना है...'

पत्नी ने पूछा- 'और दारू ?'

'ज़रूरत नहीं...'

'क्यों ?'

'दिन रात दारू की नदी चलती है...'

'अच्छा है तैरता जा...'

'तुम्हें क्या ?'

'क्यों मुझे क्यों नहीं ?'

'तूने पीनी है ?'

'अगर तू पीकर...?'

'मर गया ?'

'हां..ss..'

'अभी नहीं मरता...' रेशम ने रूखेपन से, कटु हंसी में कहा तो बचनी बोली - 'आदमी का कोई भरोसा है ?'

'नहीं..'

'फिर ?'

'तू मुझे मरा हुआ देखना चाहती है ?'

'मैं ?'

'हां..,ss.'

'सच कहूं ?'

'कह दे.'

'ड्राइवर की जोरू को क्या पता, वह कब विधवा हो जाये...'

बचनी ने यह बात बहुत कटुता से कही थी और रेशम के गले में फंस गयी थी... वह मुश्किल से पूछ सका - 'रोटी खा लूं कि जाऊं ?'

'अब आया है तो आधी रात को कहां जायेगा ?'

'अच्छा !' रेशम ने चीख कर कहा - 'वैसे जाने के लिए अनेक घरौंदे हैं...'

तब तक बचनी ने घी-शक्कर से चुपड़ी रोटी पति के सामने रख दी थी... खाना खा रहा रेशम उससे पूछ रहा था- 'तेरा अकेली का दिल लग जाता है ?'

बचनी चीखी - 'तुझे क्या ?'

'क्यों ?'

'तू परदेसों में मज़े कर...'

'कैसे मज़े ?'

'मुझे जैसे पता नहीं...'

'क्या पता है तुम्हें ?'

'मैं सब कुछ जानती हूं...'

'तू क्या मेरे साथ रहती है ?'

'नहीं...' पति ने कहा - 'पर कोई न कोई बता जाता है...'

'क्या ?' रेशम तड़पने लगा - 'बता दो!'

'तुम लोग जो कुछ करते हो...'

सुनकर रेशम को बहुत तकलीफ हुई, मगर वह उठ न सका - 'मेरी मुसीबतों को कैसे जान सकती है ?'

फिर उसने पूछा- 'कौन आता है ?'

'तेरे संगी साथी आ जाते हैं...'

'फिर क्या कहते हैं वे ?' रेशम ने कटुता से पूछा तो बचनी चुप किये रही - 'क्या कहूं ?'

मगर रेशम प्रश्न बन गया था - 'बोलती नहीं ?'

'नहीं..'

'क्यों ?'

'कोई लाभ नहीं...'

'किस कारण से ?'

'तेरे पर असर होने वाला नहीं...'

'किस बात का ?'

'मेरे कहने से...'

'नौकरी न करूं ?'

'यह कोई नौकरी है ?'

'फिर भिक्षा पात्र पकड़ लूं ?' रेशम ने दुखी मन से पूछा मगर बचनी चुप किये रही... 'मेरा मर्द भिक्षा पात्र पकड़ेगा ?'

रेशम जब भी घर आता, पत्नी यही प्रसंग शुरू कर देती थी. पति कहता - 'क्या मैं औरतें लिये घूमता हूं ?'

'मैं कहती हूं ?'

'और कैसे कहेगी ?'

'मैं नहीं कहती...'

'अच्छा, मत कहो...'

'क्या लाभ है ?'

'नहीं लाभ... नहीं...'

'फिर बातें...'

'बातें भी न करूं ?'

'किसलिए करेगी ?'

'मैं कुछ नहीं लगती.. ?'

'यह घर तेरा है, बच्चे भी तेरे... और बता.'

बचनी ने सोचा - 'इस मर्द को मैं क्या बताऊं - मुझे और क्या चाहिए ?'

उस समय बचनी के मन में आया कि एक विस्फोट की

भांति पति को कहे - 'तुझे पता नहीं तेरी ज़वान जहान बीवी को क्या चाहिए ?'

फिर उसने इर्द-गिर्द के घरों की ओर देखा. कुछ घरों की आंखें तो उसके बाहर-भीतर उसके साथ ही चिपकी हुई कांपती रहती थीं, कि- 'यह ज़नानी अपने दिन कैसे गुज़ारती है ?'

मगर वे आंखें उसके तन मन में शूलों की भांति चुभने के बावजूद उसे कुछ भी कहती नहीं थीं. इसलिए बचनी भी उनकी परवाह नहीं करती थी. अब वह रात के शून्य भरे अंधेरे में सोचती थी - 'मैं चीखने-चिल्लाने लगी तो यहां मेला लग जायेगा, कि कौन घुस आया है बचनी के घर में ?'

- वह झुक गयी !

गली मुहल्ले की औरतें जब हार-श्रृंगार करके अपने मर्दों के साथ घरों से निकलती थीं तो बचनी रोने लगती - 'पता नहीं मेरा मर्द कहां भटक रहा होगा.'

वह चीखती - 'फूट गये मेरे नसीब इस घर में आने से...'

फिर वह महसूस करती कि वह भी शोख वस्त्रों में सजी हुई अपने रेशम के साथ घर से चली है... वह कल्पना में ही तैयार होती, श्रृंगार करती और प्रतीक्षा करती कि उसका पति भी घर आ गया है और उसे सजी संवरी देखकर उसका मुंह चूम रहा है - मोहब्बत के लिए लालायित मुंह... और फिर ?

मगर यह कल्पना ही बनी रहती. उस समय पता नहीं रेशम का ट्रक दनदनाता हुआ किधर जा रहा होगा... पता नहीं किधर ?

रेशम कई बार सोचता था - 'इससे तो मैं बाहर ही अच्छा हूं... पर क्या करूं ? बच्चों को देखने के लिए आ जाता हूं... और फिर घर में खर्च भी तो देना हुआ, नहीं तो यह ज़नानी और लोगों की जेबें टटोलती रहेगी... मेरे लिए लज्जा का कारण...'

सच्ची बात तो यह थी कि रेशम की अपनी पत्नी से कभी भी बनी नहीं थी. रेशम विवाह से पूर्व भी गाड़ी चलाता था मगर बचनी के मां बाप को इस हक़ीकत का पता नहीं चला था. जब उन्हें पता चला, तब तक एक लड़की का जन्म हो गया था. फिर भी वे कहते रहे- 'गाड़ियां चलाने वाले तो पराई औरतों के मर्द होते हैं'... रेशम दुःखी रहता मगर झगड़े से बचता...

'झगड़े का क्या लाभ है ?' वह सोचता रहता.

'ये कुछ पैसे रख ले!' जेब में से पांच हजार की पच्चास-पच्चास वाली गड्डी निकालकर उसने बचनी की ओर बढ़ा दी. बचनी ने पैसे पकड़ लिये और साथ ही कह दिया - 'पिछले महीने तूने घर कुछ नहीं दिया था...'

'कुछ था ही नहीं...'

'क्यों ?'

'पैसे कोई वृक्षों को लगते हैं ?'

'नहीं लगते...पर रोटी के लिए... तो ?'

'तू इन्हें रख ले... फिर किसी दिन कुछ और पैसे दे जाऊंगा...'

'बच्चों की फीसें...?'

'दूंगा...'

'अच्छा... और वस्त्र...'

'सब दूंगा...'

खाना खाकर रेशम फारिग हुआ तो देखने लगा कि वह कहां सोयेगा ?

यह घर उसके मां-बाप का था, जिसमें दो कमरे थे. अप्रैल के दिनों में ही काफी गर्मी हो गयी थी. एक कमरे में छत वाला पंखा लगा हुआ था, और दूसरा पंखा बरामदे में लटका हुआ था. आंगन के लिए टेबल फैन नहीं था...

रेशम घर में नहीं रहता था इसलिए उसने कभी भी बीवी-बच्चों की कठिनाई को महसूस नहीं किया था. उसे पता ही नहीं था कि उसका परिवार कैसे दिन गुज़ारता और कैसे अपना गुज़ारा करता था. वह कभी-कभी घर आता और कड़वाहट पैदा करके चल देता. फिर न आने का निर्णय लेता, मगर फिर आ जाता और कहता- 'बच्चों के लिए...'

'बरामदे में सो जायेगा ?' बचनी ने पूछा तो रेशम ने कहा- 'और क्या कमरे में सोऊंगा ?'

'वहां भी सोया करता था...'

'बरामदा ठीक है... अब...'

'अच्छा...'

बचनी ने बरामदे में दोनों चारपाइयां फैलाकर उन पर बिस्तर लगा दिये. घर में बच्चे नहीं थे, इसलिए बिल्कुल वीरान था सब कुछ! चारपाई पर लेटने से पूर्व बचनी ने ज़ीरो का बल्ब भी बुझा दिया तो अंधेरे से काट खाने जैसी स्थिति बन गयी. रेशम बरामदे से बाहर आकाश को देखने लगा जैसे सितारे उन्हें देख रहे और उनकी बातें सुन रहे हों. रेशम के मन में आया- 'ये सितारे हर रोज़ यहीं रहते हैं...'

फिर रेशम ने बचनी को पूछा - 'रात की वीरानी में तू अकेली रहती है ?'

'और क्या करूं ?'

'बच्चों को नहीं जाने देना था...'

'ज़िद्द करते थे...'

'मैं मिल लेता उन्हें...'

'कभी फिर मिल लेना...' बचनी ने दुःखी मन से कहा- 'और फिर तुझे क्या ?'

रेशम चीखने लगा - 'क्यों, मेरे नहीं ?'

पत्नी ने कहा - 'तुम्हें नहीं पता ?'

रेशम ने कहा - 'मां को ही पता होता है कि बच्चे... ?'

'तो क्या मैं किसी और...'

'चुप हो जा... झगड़े में न फंसती रह... मैंने कही है कोई बात ?'

बचनी तपने लगी - 'सौ बार कह चुका है...?'

'वह और औरतों की बातें हैं...'

'और मैं ?'

'तू भी अकेली रहती है...'

'तो क्या मैं... ?'

'मैं कहता हूं- चुप हो जा... मैं तुझे कुछ नहीं कहता...'

'तू क्या कहेगा ?'

'कुछ नहीं कहता...'

'क्यों ?'

'कोई लाभ नहीं है...'

'किस लिए ?'

'तेरे पर असर होने वाला नहीं...'

'और तेरे पर ?'

'चुप कर जा. मैं लड़ने के लिए आया हूं ?'

दोनों तरफ से तनाव बन गया था. अप्रैल महीने की इतनी गर्मी नहीं थी जितनी तल्खी उनके मन मस्तिष्क में भर गयी थी, अवांछित गर्मी जिसका प्रभाव विनाशकारी था.

बचनी ने और कोई बात करनी चाही तो रेशम ने उसे झिड़क दिया - 'चुप रह !'

'क्यों ?'

'बोलेगी तो अंगारे निकालेगी...'

इसके पश्चात दोनों चुप कर गये और सोने की कोशिश करने लगे... वैसे लगता था कि दोनों की आंखों में से नींद निकल भागी थी और आंखों में कटुता भर गयी थी. रेशम सोच रहा था - 'गाड़ी के पास ही सोया रहता... तो...'

फिर उसके मन में आया - 'जम्मू जाने के कितने ही मार्ग थे, मैं किसी और मार्ग से निकल जाता. क्यों न गया ? मेरे मन में घर आने की इच्छा तो नहीं कसमसा रही थी ?'

फिर वह मन ही मन सिसकने लगा - घर ? घर इस तरह की ज़गह को कहते हैं जहां अपनी जोरू ही काट खाने के लिए लालायित रहती है.

कई बार उसके मन में आता - 'यह ट्रक ड्राइवरी का काम छोड़कर कोई और सुख आराम का कार्य करूं.'

फिर सोचता - 'क्या करूंगा ?'

'क्या सचमुच मुझे भिक्षा पात्र पकड़ना होगा ?' वह घबराहट में सोचता- 'और कोई काम तो मुझको आता ही नहीं... और फिर?'

वह बहुत दुःखी था...! उसकी नज़र सितारों से टकरा रही थी और मन में विचार, झंझावात पैदा कर रहे थे...

आधी रात के समय रेशम ने महसूस किया जैसे बचनी उठकर टॉयलट में गयी हो. वह उधर देखने लगा. बचनी वापस आयी तो अंधेरे में चारपाई से टकरा गयी. उसकी शलवार अभी तक खुली थी और वह कांप रही थी.

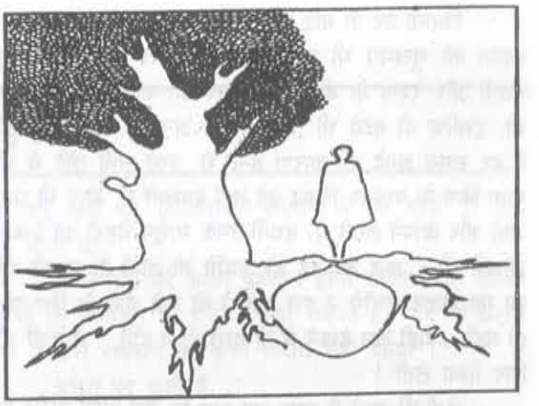

'बेचारी गिर गयी है.' रेशम ने सोचा- 'अच्छा था कि बल्ब जला लेती...' अंधेरे में तो घायल हो सकती थी, गिर जाती तो... रात के अंधेरे में कोई चोर डकैत भी अंदर आ सकता है... कैसे दिन आ गये हैं...?'

घर पहुंच कर रेशम अपने परिवार को सुख देने वाली अनेक बातें सोचा करता था, मगर दरवाज़े से बाहर निकला नहीं कि सब कुछ भूला नहीं...

'चोट खा गयी ?' रेशम ने उठकर पूछा और बचनी को आलिंगन में भरकर अपने बिस्तर पर ले गया- 'क्यों ?'

बचनी ने कहा - 'नहीं...'

रेशम ने पूछा - 'क्यों ?'

'तेरे लिए बहुत औरतें हैं...' बचनी ने कहा तो रेशम ने चोट की - 'लोग कहते हैं कि ट्रक वालों के पास होती ही हैं...'

बचनी ने कहा- 'सच नहीं ?'

रेशम ने फिर चोट की - 'और लोग कहते हैं कि ट्रकवालों की औरतें भी...?'

'क्या SS ?'

'तुझे नहीं पता ?'

'पता है...' बचनी ने नागिन की भांति कुलबलाकर कहा. वह ज़हर फेंक रही थी मुंह में से...

रेशम ने महसूस किया जैसे उसने बचनी की ज़गह किसी विषैली नागिन को गले लगा लिया हो. उसने बचनी की देह को नागिन जैसा ही अनुभव किया... नरम रेशमी, मगर विष से भरपूर... कंटीली...

'क्या हरेक ज़नानी इसी तरह ही विषैली होती है ? अथवा मेरे जैसे घर से बाहर रहने वालों की औरतें विषैली हो जाती हैं ?... मगर क्यों ?'

रेशम का हृदय कांपने लगा, सांस टूटती महसूस हुई और उसे लगा जैसे वह सिल पत्थर बनता जा रहा हो. वह कुछ और ही सोचने लगा...

कितनी देर के बाद पति-पत्नी इकट्ठे हुए थे, और वे अपने एकांत को सुखमय भी बना सकते थे. मगर पहले दिन से ही बचनी और रेशम के बीच एक प्रकार का कटु तनाव बना रहा था. इसलिए दो बच्चे भी तनाव में ही जन्म ले सके थे... और वे हर समय झगड़े का कारण बनते थे. बच्चे अभी छोटे थे और माता-पिता के परस्पर विवाद को नहीं समझते थे, फिर भी घबरा जाते और कांपने लगते थे. बचनी उनके मासूम चेहरों को देखकर सोचती थी - 'कल को बड़े हो जायेंगे तो लोगों के सामने कौन सा मुंह लेकर जायेंगे ? इस पति ने तो मुझे जीने के लिए छोड़ा ही नहीं... यही दिन देखने थे तो बच्चे ही न होते... मैं कहीं और सिर छिपा लेती !'

दोनों ही इकट्ठे थे मगर लग रहा था जैसे उनके शरीर एक दूसरे को कांटों की भांति चुभ रहे हों.

'कभी इस तरह नहीं हुआ था.' रेशम के मन में आया- 'पर आज पता नहीं इसमें विष कैसे भर गया है... क्या कभी कोई ज़नानी अपने मर्द के लिए विषैली नागन भी बन सकती है ?'

'हां, बन सकती है!' बचनी की देह कह रही थी.

'जब नारी का आदर सम्मान न हो... उसका निरादर हो... और...?'

'चुप रह !'

'क्यों ?'

'दो क्षण मिले हैं...'

'मेरा विनाश करने के लिए ?'

'विनाश ?'

'और क्या ?'

'अच्छा...'

रेशम जल्दी ही सचेत हो गया और सोचने लगा - 'ग़लती हो गयी... पता नहीं यह औरत अकेली रहती हुई यहां क्या कुछ करती हो...' मुहल्ले के एक युवक के बारे में कई लोग उसके कान भर चुके थे... और वह भी गाड़ी चलाता है... और पता नहीं अब क्या ?

बचनी उसे कह रही थी - 'जो मर्द घर से बाहर रहते हैं, उन्हें चिंता लगी रहती है कि कहीं उनकी औरतें गैर मर्दों के बिस्तर में ही न सोयी रहती हों...'

रेशम बिलबिलाया - 'झूठ तो नहीं...'

'मगर सच ?'

'क्या पता...'

'अच्छा!'

दोनों ने आसमान के सितारों की ओर देखा - 'तुम तो साक्षी हो कि नहीं ?'

रात के एकांत में चारपाई पर लेटा हुआ रेशम सोच रहा था - 'मैं बाहर तो बहुत ही बच कर रहता हूं... मगर, पता नहीं यह ज़नानी मुझे ही बीमारी न लगा दे... क्या पता... कहां... कहां...?'

और उसका शरीर पसीने से भीग गया. उसे महसूस हुआ जैसे उसके शरीर में कांटे चुभने लगे हों, जिनके द्वारा बीमारी के कीट उसके शरीर में प्रवेश करते जा रहे हों...! उसके संगी साथी ड्राइवर इस तरह की अनेक बातें करते थे और उसे भी संभलकर रहने के लिए कहते थे - 'यह जीवन दुबारा नहीं मिलने वाला.'

'रेशम... देखना नहीं...?'

और महीनों तक घर से बाहर रहकर भी वह संभलकर रहता था. हर शहर में से गुज़रते हुए लाल बत्तियां उसके लिए प्रकाश बनने की तमन्ना प्रकट करती थीं मगर वह गाड़ी की तेज़ रोशनी से उनके निकट से निकल जाता था...

'रुक जा...'

'क्यों ?'

'मौज मेला...'

'किस बात का ?'

'तू मर्द नहीं है ?'

'बिल्कुल हूं...'

'तब फिर ?'

'नहीं ?'

'क्यों ?'

'मेरे लिए दो बच्चे ही काफी हैं...'

उसके पीछे कहकहे गूंजते मगर वह आराम से लालबत्तियों से पार चला जाता...

'बहुत ग़लती हुई !' रेशम पछतावा कर रहा था जबकि उसने बचनी की आवाज़ सुनी - 'तू यहां न आया कर.'

रेशम घबरा गया - 'क्यों ?'

'लोग बातें करते हैं...'

'किसकी ?'

'तेरी...'

'और तेरी ?' रेशम ने तड़पकर पूछा तो बचनी ने कहा - 'और मैं नहीं चाहती कि तू मुझे कोई ख़तरनाक बीमारी लगा दे... समझा ?'

रेशम के मन में आया, अभी बचनी के टुकड़े-टुकड़े कर दे मगर वह हिल भी न सका, उसकी जीभ निशब्द हो गयी थी, शरीर बर्फ हो गया था.

९६ - गोल्डेन ऐवेन्यू,
फेज़ - I, जालंधर - १४४ ०२२

नहान

सुबह से ही घर का माहौल उत्सवजनित था. उमस अधिक थी. उबटन तैयार करते हुए सांत्वना के माथे से पसीने की बूंदें टपक रही थीं. पीठ पर मैक्सी चिपचिपाने लगी थी. स्टील के कटोरे में उबटन फेंटते वह दो बार माथे की बूंदें टपका चुकी थी.

"क्या मुसीबत है !" सांत्वना बुदबुदायी, "अभी मई शुरू ही हुआ है... आगे क्या होगा !" उसने घर की सफाई-बर्तन मांजने वाली लड़की को आवाज दी, "निर्मला..."

निर्मला कमरे में झाड़ू लगाती गाना गुनगुनाने में मस्त थी, "बरेली की बाजार में झुमका गिरा रे... बरेली की..."

"निर्मलाऽऽ..." सांत्वना जोर से चीखी. लेकिन चीखते ही हांफने लगी. काया किंचित स्थूल हो जाने से तेज बोलने, भारी काम करने या सीढ़ियां चढ़ने से वह हांफ जाती है.

"जी, बीबीजी...आयी..." हाथ में झाड़ू पकड़े निर्मला आ खड़ी हुई.

"किचन में स्टील के दो किलो के जो डिब्बे हैं उनमें से एक में बेसन है... चुटकी भर ला दे... उबटन गीला हो गया है. दही अधिक पड़ गया."

निर्मला बेसन का डिब्बा ही उठा लायी.

"अरे मूर्ख, थोड़ा-सा ही चाहिए था...चल रख आ वहीं और कड़वा तेल का डिब्बा सामने ही रखा है, ले आ..." बेसन निकाल डिब्बा निर्मला को लौटाती सांत्वना बोली.

"बीबीजी, आप कभी उबटन से नहाती नहीं, फिर..." बेसन का डिब्बा थामती निर्मला ने पूछा.

"तुझे मालूम नहीं...?" सांत्वना निर्मला की ओर देखने लगी.

निर्मला ने अनभिज्ञता में सिर हिलाया.

"बेबे का नहान है आज..." सांत्वना जोर से हंसी तो उसका उदीयमान पेट हिलने लगा.

निर्मला फिर भी अबूझ-सी खड़ी रही. वह नहीं समझ पायी कि बेबे यानी सांत्वना बीबीजी के पति के 'नहान' पर बीबीजी इतनी जोर से हंसी क्यों !

"तू नहीं समझेगी. समझकर करेगी भी क्या !"

"वह तो ठीक है बीबीजी... पर बाबूजी के नहान का मतलब... सच मेरे समझ से बाहर है."

निर्मला सांत्वना के पति को बेबे नहीं बाबूजी कहती है, जबकि सांत्वना और मित्र बेबे बुलाते हैं. शादी तक वह श्यामल राय उर्फ 'बाबा' था. विवाहोपरांत सांत्वना ने उसे 'बाबा' से 'बेबे' बना दिया था.

"अपने नाम की अलग पहचान होनी चाहिए. यह जानते हुए भी कि नागार्जुन को दुनिया 'बाबा' कहती है, फिर भी आपने मित्रों के इस संबोधन का कभी विरोध नहीं किया !"

"आदत पड़ चुकी है..."

"आज से बेबे पुकारूंगी और मित्रों को भी यही कहना होगा." सांत्वना ने कहा.

डॉ. स्मसिंह चंदेल

"तुम्हारे हुक्म को कौन टाल सकता है !" सांत्वना के बालों में उंगलियां घुमाता श्यामल बोला था.

उस दिन के बाद से सभी उसे 'बेबे' बुलाने लगे थे.

"नहान का मतलब है जो विशेष अवसर पर किया जाये." सांत्वना ने अपनी ओर ताकती निर्मला से कहा.

"लेकिन आज कोई त्यौहार नहीं है बीबीजी...न अमावस...न पूरनमासी..."

"मैंने कहा न कि तू नहीं समझेगी बेबे के नहान को. बेबे का हर स्नान किसी विशेष अवसर से कम नहीं होता."

"रोज-रोज नहाना, फिर भी विशेष... बीबीजी सच ई सब मेरे भेजे में न घुसी." निर्मला झाड़ू हिलाती कमरे में घुस गयी.

सांत्वना उबटन फेंटने लगी.

❐

श्यामल का स्नान दो या तीन महीने में एक बार होता है. वह भी तब जब मौसम गर्म होता है. ठंड के दिनों में... नवंबर से मार्च तक...पांच महीने वह बाथरूम का प्रयोग केवल हाथ-पैर धोने के लिए करता है... वह भी गर्म पानी से. हाथ केवल बाजुओं तक और पैर...केवल उतना हिस्सा ही जितने पर जूते रहते हैं. महीने में एक बार गर्म पानी में तौलिया भिगो-निचोड़कर वह बदन अवश्य पोछ लेता है.

"भाभी तुम्हें बर्दाश्त कैसे करती हैं ?" महेश मोहन, मित्र जिन्हें एम. एम. कहते हैं, के पूछने पर एक बार श्यामल बोला था, "यह भी एक रहस्य है एम. एम.. उसे तुम नहीं समझ सकते." कुछ देर वह रुका, फिर बोला, "यदि मैं साल-दो साल भी स्नान

न करूं तो भी कोई फ़र्क नहीं पड़ेगा. न तुम्हारी तरह मुझे दिन में उबासी आती है और न आंख से कीचड़. तुम्हें सुनकर आश्चर्य होगा कि मैंने महीनों तक सांत्वना को भी इस विषय में हवा नहीं लगने दी थी."

"कैसे ?" महेश मोहन चौंका.

सोफे पर पसरते हुए तिपाई पर पैर फैला श्यामल बोला, "रात देर से सोते हम. आज भी आदत है देर से सोने की. सांध्य कॉलेज की प्राध्यापकी के सुख तुमसे अधिक हैं. तुम्हें सुबह उठते ही दफ़्तरों के बाबुओं की भांति कॉलेज भागने की चिंता रहती है. पेट साफ़ हो न हो...मास्टर जी बस में सवार मिलेंगे. दोपहर तक विद्यार्थियों के बीच झींक-झांक कर लौटते हो और शाम तक चादर तान सोते हो."

"कहानी मत गढ़ो बेबे..." एम. एम. गंभीर हो गया.

"किसी कहानी से कम नहीं." श्यामल एम. एम. के चेहरे पर नज़रें टांग बोला, "उन दिनों हम राणाप्रताप बाग में रहते थे. सांत्वना आकाशवाणी में एडहॉक काम करती थी. सुबह सवा आठ बजे घर से निकलती थी. वहां तो तुम कई बार आये थे ?"

महेश मोहन चुप था.

"नयी-नयी शादी थी. सोते हुए एक बज जाते. लेकिन दफ़्तर जाने के लिए सांतों छः बजे तक उठ जाती. डेढ़ कमरों का मकान था. साफ-सफाई कर वह नाश्ता तैयार करती और साढ़े आठ बजे की बस पकड़ने के लिए जब घर से निकलने लगती, मुझे तब जगाती. सांत्वना चली जाती तब मेरी दिनचर्या प्रारंभ होती. कॉलेज शाम का था... प्रायः लौटने में रात दस-ग्यारह बज जाते. ऐसी स्थिति में सांत्वना कैसे जान पाती कि मैंने स्नान किया था या नहीं."

"लेकिन छुट्टी के दिनों में."

"वह भी अच्छी कहानी है." श्यामल हंसा, "पानी लेकर मैं बाथरूम में चला जाता. कपड़े बदल लेता और देर तक नहाने का नाटक करता रहता. अंडर वियर-बनियान धोता. सिर को गीला कर लेता. पानी यों गिराता जैसे सिर से नहा रहा हूं. आधा अंटा खर्च कर निकल आता." ठठाकर हंसा श्यामल. एम. एम. भी हंसने लगा.

"तुम जैसे दरिद्रनारायण प्राध्यापक जिन बच्चों को पढ़ायेंगे वे पता नहीं, देश का कितना हित करेंगे."

"एम. एम. एक बात कहना है."

एम. एम. श्यामल की ओर देखने लगा.

"नहाने - न नहाने के प्रकरण को प्रचारित मत करना." श्यामल के स्वर में प्रार्थना भाव था.

"तुम कितना भी चतुर बनो, लेकिन हो मूर्ख ही."

"मतलब ?"

"सभी पहले से ही जानते हैं."

१२ मार्च १९५१, नौगवां (गौतम), कानपुर

लेखन / प्रकाशन : *छोटी-बड़ी लगभग ३० पुस्तकें प्रकाशित. 'रुकेगा नहीं सवेरा', 'रमला बहू', 'पाथर टीला', 'खुदीराम बोस' (उपन्यास); 'ऐसे थे शिवाजी', 'अमर बलिदान', 'क्रांतिदूत अज़ीमुल्ला खां' (किशोर उपन्यास); 'पेरिस की दो कब्रें', 'अजगर तथा अन्य कहानियां', 'हारा हुआ आदमी', 'आदमखोर तथा अन्य कहानियां', 'एक मसीहा की मौत', 'चौपालें चुप हैं', 'आखिरी ख़त' (कहानी संग्रह); 'यत्किंचित' (कविता संग्रह); 'कुर्सी संवाद' (लघुकथा संग्रह) एवं दस बाल कहानी संग्रह.*

संपादन : *'प्रकारांतर' (लघुकथा संकलन), 'बीसवीं शताब्दी की उत्कृष्ट आंचलिक कहानियां (दो खंड).'*

पुरस्कार : *'हिंदी अकादमी,' (दिल्ली) द्वारा १९९० में और 'उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान' द्वारा १९९४ में पुरस्कृत.*

महेश मोहन चला गया, लेकिन श्यामल देर तक सोचता रहा था कि पार्टीवालों को इस रहस्य की जानकारी हुई तो कैसे ! ❐

बात उन दिनों की है जब श्याम दिल्ली आया ही था. परिचय सूत्र एक मात्र सहारा थे दिल्ली प्रवास के लिए. कई स्थानों में अड्डा जमाने के बाद जब वह कुछ कमाने की स्थिति में हुआ, उसने यमुनापार भजनपुरा में गली नं. चार में छोटा-सा कमरा किराये पर ले लिया. कुछ संस्थाओं का अनुवाद और प्रूफ-रीडिंग का इतना काम वह कर लेता कि मकान के किराये के अतिरिक्त निर्वाह की जुगत बन जाती. लेकिन इस सबके लिए उसे सुबह सात बजे से रात देर तक लगा रहना पड़ता.

एक दिन प्रख्यात मार्क्सवादी आलोचक डॉ. जनार्दन राय का साक्षात्कार लेने उसे ग्रेटर कैलाश जाना था. डॉ. राय ने कहा था कि वह सुबह आठ बजे तक पहुंच जाये. क्योंकि उन्हें दस बजे विज्ञान भवन में एक सेमीनार में पहुंचना है. साक्षात्कार 'दैनिक प्रभात' के रविवारीय में प्रकाशित होना था. श्यामल अवसर छोड़ना

नहीं चाहता था. कठिनाई से एक महीना तक संपर्क करने के बाद डॉ. राय ने उसे समय दिया था. उसके साथी ने ठीक ही कहा था कि डॉ. राय को पकड़ना आसान नहीं है. यदि पकड़ में आ भी गये तो कुछ उगलवा लेना और भी कठिन है. लेकिन जो भी बोलते हैं उसके मायने होते हैं. उनका कुछ भी बोला-लिखा महत्वपूर्ण हो जाता है... लोगों की चर्चा का विषय बन जाता है.

डॉ. राय अनेक संस्थाओं के मानद अध्यक्ष, सदस्य, सलाहकार और अनेक समितियों में भागीदारी भी थी उनकी. एक फोन पर बड़े से बड़े काम करवाने की क्षमता वाले डॉ. राय से साक्षात्कार करना श्यामल के लिए सुखद अवसर था. 'यदि तनिक भी नैकट्य मिल सका तो वे किसी कॉलेज या संस्था से मुझे जोड़ सकते हैं.' उसने सोचा था और जैसे ही 'दैनिक प्रभात' के रविवारीय संपादक ने उनके साक्षात्कार की चर्चा की श्यामल उछल पड़ा था.

"सर, एक बार पहले आप बात कर लें डॉ. राय से. मेरा संक्षिप्त परिचय भी दे देंगे... आगे मैं देख लूंगा.'"

"फोन लगाओ..." साहित्य संपादक अनिल तिवारी ने डायरी श्यामल की ओर बढ़ा फोन नं. नोट कर फोन मिलाने के लिए कहा.

श्यामल ने फोन मिलाया. घंटी बजने पर रिसीवर तिवारी की ओर बढ़ा दिया. डॉ. राय लाईन पर थे. तिवारी ने साक्षात्कार का उद्देश्य बताकर श्यामल का परिचय दिया, "डॉक्टर साहब, बालक बहुत मेधावी और होनहार है. आपके ही गृहराज्य का है और मुख्य बात यह कि आपकी ही जाति का है."

अनिल तिवारी के बात समाप्त करते ही श्यामल बोला, "सर, आपने यह क्या कह दिया ?" उसके चेहरे पर भय का भाव स्पष्ट था, "उन जैसे मार्क्सवादी आलोचक..."

"उदार व्यक्ति हैं डॉ. राय... मेरी बात का बुरा नहीं मानते." श्यामल की बात काटते धीमे स्वर में तिवारी बोला, "एक बात समझ लो श्यामल जी, बड़े साहित्यकारों को नये रचनाकारों से अधिक छपने की लालसा रहती है."

"जी. फिर मैं आज ही शाम तक डॉ. राय से बात कर लूंगा."

"शीघ्रता नहीं. कल-परसों कर लेना. साक्षात्कार की जल्दी नहीं है. जब भी कर लाओगे... छाप दूंगा. लेकिन जनवरी के अंतिम रविवार तक जाना ही चाहिए. फरवरी का पूरा महीना संपादक जी ने विशेषांकों के लिए निश्चित कर दिया है."

"ठीक है सर."

उस दिन के बाद से श्यामल लगातार डॉ. राय को फोन करता रहा था. वह जब किसी अख़बार के दफ़्तर में होता या किसी प्रकाशक के यहां... फोन कर लेता. प्रायः डॉ. राय मिलते न थे... मिलते तो समय के संकट की बात कहकर टाल देते. लेकिन उस दिन उन्होंने उसे समय दे ही दिया, "समय की पाबंदी आवश्यक है बर्खुर्दार. सुबह आठ बजे तक नहीं पहुंच सके तो रह जाओगे."

"मैं आठ बजे से पहले ही पहुंचूंगा सर."

आठ से पहले पहुंचने के लिए उसे सुबह छः बजे से पूर्व निकलना था. रात देर से सोया था. उठने में देर हो गयी. घड़ी देखी, साढ़े पांच से ऊपर हो चुके थे. उस दिन ठंढ इतनी कि पानी छूते ही शरीर में सुरसरी होती. पानी गर्म करने का समय न था. स्नान करने का विचार शाम के लिए स्थगित कर वह बीस मिनट में तैयार होकर सड़क पर आ गया था.

लेकिन शाम जल्दी लौट नहीं पाया वह. डॉ. राय का साक्षात्कार करने के बाद वह जे. एन. यू. चला गया परिचित छात्रों से मिलने. वहां से 'दैनिक प्रभात,' जहां अनिल तिवारी के कमरे में बैठकर उसने साक्षात्कार तैयार किया. तीन घंटे से ऊपर का समय लग गया. वहां से घर जाना चाहता था, लेकिन तिवारी ने टोका, "श्यामल, आज करौलबाग में घनश्याम कोमल के घर काव्य गोष्ठी है. तुम भी चलो."

वह इंकार नहीं कर सका.

दो घंटे से अधिक उसे बैठना पड़ा अनिल तिवारी के पास. छः बजे शाम तिवारी के स्कूटर पर सवार होकर वह 'कोमल' के घर पहुंचा. वहां पहले से ही छः कवि उपस्थित थे. तिवारी के पहुंचने से माहौल में उत्साह आ गया. तिवारी ने सभी से उसका परिचय करवाया. सबने अपना परिचय दिया. उन सभी की कविताएं 'दैनिक प्रभात' के रविवारीय में प्रायः छपती थीं.

रात आठ बजे तक कविता, गीत और ग़ज़लों का दौर चलता रहा. उसने भी दो कविताएं, 'आग से मत खेलो,' और 'जब वे बज्र बन टूटेंगे' सुनायीं.

सवा आठ बजे जब वह चलने लगा कोमल ने हाथ पकड़ लिया, "रुको श्यामल जी... असली दौर तो अब शुरू होगा."

"भजनपुरा जाना है."

"बहुत दूर नहीं है... यहां से सीधी बस जाती है. चालीस पैंतालीस मिनट का रास्ता है."

वह बैठने लगा तो एक कोने से आवाज़ आयी, "मुझे गाजियाबाद जाना है श्यामल जी."

वह कंचन प्रभात था. ग़ज़लें लिखता था.

श्यामल चुप रहा. मन ही मन सोचता रहा कि रात दस बजे मकान मालिक दरवाज़ा बंद कर देगा... तब ?

छोटी मेज पर नमकीन, सलाद आदि की प्लेटें आ गयी थीं. कंचन प्रभात थैले से आर. सी. की बोतल निकाल रहा था. कोमल पेग भरने लगा. कंचन प्रभात पानी मिलाने लगा और तिवारी आइस क्यूब डालने लगा.

पीने का दौर प्रारंभ हो गया. आर. सी. खत्म हुई तो कोमल

ने ओल्ड मॉन्क निकाल ली. वह एक पेग पर ठहरा था, लेकिन तिवारी ने, जो उसके बगल में बैठा था, उसके मना करने के बावजूद आर. सी. की बोतल में बची शराब उसके गिलास में ढाल दी. वह एक पेग से अधिक थी.

सवा नौ बजे से जब ऊपर होने लगा... वह उठ गया. उसके मद्यपान का वह पहला अवसर था. उसे लग रहा था कि दिमाग चकरा रहा है और पैर लड़खड़ा. कुछ देर वह खड़ा रहा आंखें फाड़ सभी को देखता रहा. किसी ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया, क्योंकि सभी की नज़रें कोमल पर टिकी थीं. कोमल एक-एक कर सभी के गिलास में ओल्ड मॉन्क ढाल रहा था.

"श्यामल, आपका गिलास खाली है... मैं उसे भर रहा हूं..." कोमल ने कहा.

"नो थैंक्स." श्यामल दरवाज़े की ओर बढ़ा. किसी ने उसे टोका नहीं. उसे लग रहा था कि वह गिर जायेगा. उबकाई भी आ रही थी. लेकिन जी कड़ा किये था वह.

"यात्रा सुखमय हो." कंचन प्रभात की आवाज़ उसने सुनी. सभी के ठहाके गूंजे, फिर कोमल का स्वर, "नया है... आदत पड़ जायेगी."

किसी प्रकार वह बस स्टैंड तक पहुंचा. बस तुरंत मिल गयी. खाली थी. वह आगे की ओर किनारे की सीट पर बैठ गया. मल्कागंज पहुंचने तक बस भर गयी. कड़ाके की ठंड के बावजूद उसे गर्मी लगने लगी. उसने खिड़की का शीशा हल्का सा खोल दिया. बर्फीली हवा का ठंडा झोंका अंदर आया तो उसे अच्छा लगा, लेकिन सवारियों में शोर मच गया, "किस गधे ने खिड़की खोल दी... बंद करो..." कई स्वर एक साथ चीख रहे थे. नशा उस समय तक श्यामल पर प्रभाव जमा चुका था. उसे लग रहा था कि वह किसी बाज़ार में है और लोग चीख रहे हैं. लोगों की आवाज़ें खुली खिड़की से बह गयीं. उसने पीछे डंडे से सिर टिका लिया और आंखें बंद कर लीं. हवा अच्छी लग रही थी उसे.

"क्यों बे खिड़की खोलकर बैठा है... हीरो बनकर." एक अधेड़ उस पर झुक आया था और चीखकर कह रहा था, ड्राइवर साब, इसे जमुना पुल पर उतार देना. रात भर में कुल्फी जम जायेगी बच्चू की."

उसने अर्द्धनिमीलित नेत्रों से उस व्यक्ति को देखा और फिर आंखें मूंद लीं.

बस में ठहाका गूंज रहा था. कंडक्टर आ गया था और टिकट लेने के लिए उसे झकझोर रहा था. वह संभलकर बैठ गया. जेब से दो का नोट निकाला और कंडक्टर की ओर बढ़ाते बोला, "भजनपुरा."

कंडक्टर ने नोट पकड़ पहले खिड़की बंद की, "आपको हवा खानी है तो बस से उतरकर खायें. सवारियों को ठंड लग रही है." टिकट थमाता कंडक्टर बोला.

भजनपुरा उतरकर उसे लगा कि वह घर तक नहीं पहुंच पायेगा. वह सड़क किनारे बैठ गया. बैठते ही पेट में बगूले उठे और दिन भर का खाया-पिया बाहर आ गया. वह उल्टी करता रहा. जब उसे लगा कि अब कुछ नहीं निकलेगा, रूमाल से मुंह पोछ उसने सड़क पार की और किसी प्रकार घर पहुंचा. उसे देखते ही मकान मालिक उबल पड़ा.

"श्यामल जी... यह आपके आने का समय है...? आज पहला चांस है... आगे ध्यान नहीं रखेंगे तो सड़क पर बिस्तर बिछाना होगा." मकान मालिक क्षण भर के लिए रुका, फिर बोला, "इस मकान में ऐसा नहीं चलेगा. शरीफ़ों का घर है..."

वह मन ही मन सोचता रहा, "हर मकान मालिक अपने को शरीफ कहता है... बदमाश शायद किरायेदार ही होते हैं."

वह बिना बोले कमरे में चला गया और जाते ही चारपाई पर लेट गया. लेकिन मन अजीब सा हो रहा था. लग रहा था कि शरीर से बगूले उठ रहे हैं.

'नहा लेने से शायद कुछ शांति मिले.' उसने सोचा और उठकर स्टोव सुलगाने लगा. दो पंप मारे, लेकिन लगा कि हाथों में ताकत नहीं है. स्टोव एक ओर खिसका उसने कपड़े लिये और बाथरूम में घुस गया.

वह सिर पर ठंडा पानी डालता रहा. शुरू में ठंड अनुभव नहीं हुई, लेकिन चार-पांच मग पानी पड़ जाने के बाद उसे अनुभव हुआ कि पानी बर्फ की भांति ठंडा है फिर भी उसने चार मग पानी और डाला.

खाना खाने की इच्छा न थी. चाय की तलब हो रही थी, लेकिन दूध नहीं था. बिना दूध की चाय पीकर उसने रजाई तानी और सोने का उपक्रम करने लगा. लेकिन रात भर नींद नहीं आयी.. शरीर में कांटे से चुभते रहे. सुबह उठा नहीं गया. वह देर तक पड़ा रहा. बदन टूट रहा था और पसलियों में असह्य दर्द था. उसने पड़ोसी किरायेदार शर्मा जी को आवाज़ दी. शर्मा जी दफ़्तर जाने के लिए तैयार हो रहे थे. एक ही आवाज़ में दौड़े आये. उसे देखते ही घबड़ा गये. हाथ-माथा छूकर बोले, "श्यामल जी, आपको तेज बुखार है."

"छाती-पसलियों में असह्य पीड़ा है." किसी प्रकार वह कह पाया.

शर्मा जी ने पसलियों के पास हाथ रखा, फिर बोले, "मौसम खराब है, लगता है आपको ठंड लग गयी है. मैं डॉक्टर चौधरी को कह दूंगा... आकर देख जायेंगे."

डॉक्टर चौधरी का कुछ दूर पर... गली के नुक्कड़ पर क्लीनिक था.

श्यामल ने आंखों के इशारे से शर्मा को संकेत किया कि, "ठीक है."

लगभग एक घंटा बाद डॉक्टर चौधरी आये. शर्मा की पत्नी साथ थीं. डॉक्टर चौधरी ने मुआयना करने के बाद बताया कि उसे ठंड लग गयी है. एहतियात की आवश्यकता है. वे इंजेक्शन दे रहे हैं और कुछ दवाएं भी. यदि आज रात तक नियंत्रित न हुआ तो कल किसी अस्पताल या नर्सिंग होम ले जाना होगा.

डॉक्टर के इंजेक्शन से पसलियों का दर्द कम हुआ. डॉक्टर चौधरी रात भी आये और चेक-अप कर कहा कि खतरा टल गया है.

पूरे सप्ताह वह बिस्तर पर पड़ा रहा था.

उस घटना को याद कर आज भी उसके रोंगटे खड़े हो जाते हैं. उसके बाद से ही वह स्नान से घबड़ाने लगा था. प्रारंभ में दो-चार दिन के अंतराल में वह स्नान करता रहा, लेकिन धीरे-धीरे दिनों की गिनती आगे खिसकती गयी थी और समय बीतने के साथ वह दो-तीन महीने में एक बार नहाने लगा था.

स्वस्थ होने के बाद अधिक दिनों तक वह उस मकान में नहीं रह सका था. अपनी व्यावसायिक अस्थिरता और विवशता के कारण उसे प्रायः रात देर होने लगी थी और इसी बात से नाराज़ मकान मालिक ने एक दिन नोटिस दे दिया था कि वह एक सप्ताह में मकान खाली कर दे. उसे मकान बदलना पड़ा था.

❐

"बेबेऽऽ... उबटन तैयार हो जाने के बाद सांत्वना ने श्यामल को आवाज़ दी. वह जनसत्ता के रविवारीय परिशिष्ट पर मुंह गड़ाये लूशुन की कविता का अनुवाद पढ़ रहा था. कविता में वह इतना खोया हुआ था कि उसे सांत्वना की आवाज सुनाई नहीं दी.

सांत्वना उस समय आंगन के साथ बरामदे में बैठी थी. एक वर्ष पहले श्यामल इस मकान में आया था. राणा प्रताप बाग से वह मालवीय नगर गया था. सांत्वना का कार्यालय उन दिनों हौज़ख़ास में था और ग्रीन पार्क या हौज़ख़ास में मकान मिलना कठिन था. मालवीय नगर में मकान की दूसरी मंजिल में काफी समय तक वे रहे थे. लेकिन उसमें कुछ परेशानियां थीं. काफी खोज के बाद उसे सर्वोदय विहार में उस मकान का एक हिस्सा मिल गया था, जो मकान मालिक के हिस्से से बिल्कुल अलग, सुरक्षित और एकांत-शांत था.

गेट के ठीक सामने बरामदा था. बरामदे के दाहिनी ओर छत के लिए जीना, जीने के साथ ही चौड़ी गैलरी, जिसमें दरवाज़ा था. यही दरवाज़ा श्यामल के 'हिस्से' का मुख्य दरवाज़ा था. दरवाज़े के बाद चार फुट चौड़ी और लगभग दस फुट लंबी एक और गैलरी थी... खुली, फिर वह कमरा, जिसकी दाहिनी दीवार पर शेल्फ निकलवाकर लकड़ी का काम करवाया गया था. बायीं दीवार से सटी किचन थी और किचन के ऊपर दुछत्ती डालकर स्टोर-सा बना दिया गया था, जिसमें अंदर जाने का रास्ता कमरे से था. श्यामल

ने उसे स्टडी बना लिया था. सुबह सांत्वना के दफ़्तर जाने के बाद वह प्रायः उस स्टोर में, जिसे वह मियानी भी कहता, चला जाता. ऊपर जाने के लिए उसने एक सीढ़ी खरीद ली थी. ऊपर पढ़ता-लिखता, विद्यार्थियों के लिए नोट्स तैयार करता और कुछ काम करने की इच्छा न होती तो वहीं सो जाता. गर्मी में भी वहां छोटे पंखे से काम चल जाता था श्यामल का, जबकि दूसरों का उसमें घुसते ही दम घुटने लगता.

पहले कमरे में सोफा, बांस के दो मोढ़े, जिन्हें सांत्वना पंचकुइयां रोड से लायी थी और तिपाई पड़ी थी. दस गुणा ग्यारह के उस कमरे को श्यामल एक प्रकार से ड्राइंग रूम के रूप में प्रयोग करता. मित्रों की बैठकें वहीं होतीं. साहित्यिक बहसों का केंद्र भी वही कमरा रहता.

उस कमरे से बाहर निकलते ही बायीं ओर किचन, सामने बरामदा, बरामदे के बायीं ओर दूसरा कमरा, बरामदे के दायीं ओर दूसरे कमरे के सामने दस बाई बारह का खुला आंगन, जिसका दरवाज़ा पीछे की पंद्रह फुट चौड़ी गली में खुलता था. बरामदे के सामने दूसरे कमरे से सटा बाथरूम कम टॉयलेट, जिसका फर्श और दीवारें चिकने संगमरमर की थीं और सांत्वना ने वहां आधुनिक प्रसाधन सामग्री को सजा रखा था.

"बेबेऽऽ.." सांत्वना की आवाज़ तेज थी.

"आया डार्लिंग." पैंट पर खादी का कुर्ता पहने बालों पर हाथ फेरता वह सांत्वना के पास आ खड़ा हुआ, "तुम्हारी तैयारी

पूरी हो गयी... आज मानोगी नहीं."

"न मानने का क्या मतलब... मार्च के शुरू में नहाये थे... नहीं ?"

"फिर, क्या हुआ ?"

"हुआ कुछ नहीं, लेकिन न नहाने से यदि कोई बीमारी हो गयी ?"

"कुछ नहीं होगा सांतो..." श्यामल ने सांत्वना के गालों को सहलाते हुए कहा.

"क्या करते हो ! सामने कमरे में निर्मला पोंछा लगा रही है." सांत्वना फुसफुसाई.

"उसे पता होना चाहिए कि पत्नी को ही प्यार कर रहा हूं."

"मतलब ? किसी और को भी प्यार कर सकते हो ?"

"स्वप्न में भी नहीं."

सांत्वना ने स्नेहिल दृष्टि से श्यामल को निहारा. श्यामल ने बायीं आंख दबा दी, "तुम्हारे इन गुलाबी गालों ने गुलाम बना लिया है... अब किसकी मजाल जो इन आंखों की चाहत बने."

"अच्छा बाबा... मान गयी... अब जल्दी करो. कपड़े उतारो और उबटन लगाओ."

"तुम नहीं लगाओगी ?"

"मैं केवल पीठ पर मलूंगी."

"तुम्हारे कोमल हाथों से मैल आसानी से छूटता है."

"देखते नहीं." पेट की ओर इशारा किया सांत्वना ने.

"कान लगाकर सुनूं... कोई आवाज़ आती है या नहीं."

"मज़ाक नहीं... देर हो रही है."

"पीठ पर तो तुम्हें ताकत लगानी पड़ेगी."

सांत्वना सोच में डूब गयी. डॉक्टर ने मना किया था कि अधिक वज़न नहीं उठाना और न ही ऐसा कोई काम करना है जिसमें अधिक शक्ति लगानी पड़े.

"तुम रहने दो... मैं ही कर लूंगा."

"तुम कैसे करोगे ?" सांत्वना कुछ देर तक सोचती रही, फिर बोली, "अगर ऐतराज न हो तो मैं निर्मला को कह दूं... पीठ पर वह लगा देगी."

"निर्मला..." हाथ पर उबटन मलते श्यामल बोला, "निर्मला से कहना उचित होगा ?"

"क्यों तुम्हें कोई परेशानी ?"

"नहीं... फिर भी. नौकरानी... कई घरों में जाती है... गाती घूमेगी."

"यह राणा प्रताप बाग या कोई छोटी कॉलोनी नहीं है कि यहां की औरतों को दूसरों के घरों में नाक घुसाने की आदत हो. वहां पास-पड़ोस की औरतों की जासूसी का सहज साधन ये झाड़ू-पोछा-बर्तन करने वाली होती हैं. यहां किसी को फुर्सत नहीं. एक साल हो गया... किसी से तुम्हारी हलो हुई ? मकान का कमरा गेट के सामने ही पड़ता है... उसका बेटा जब-तब अख़बार पढ़ता दिख जाता है... कभी बात हुई ? यहां सभी धन के मद में डूबे घड़ियाल हैं... जिनकी अपनी दुनिया है. इनकी जुगाली के विषय छोटी-मोटी बातें नहीं होतीं. यहां पतियों के निकलते ही औरतें गाड़ियों में सवार हो निकल जाती हैं... खुदा जाने कहां जाती हैं."

"अरे यार, तुमने अच्छा खासा भाषण दे डाला. जाती कहां होगीं... किटी-पार्टियों में... मित्रों से मिलने." गदौली में उबटन लगाता श्यामल बोला, "लेकिन तुम इस ग़लतफहमी में मत रहो सांतो कि राणा प्रताप बाग जैसी कॉलोनियों में धन-पशु नहीं रहते..."

"छोड़ो उन्हें..."

"वाह! तुम भाषण दो तो ठीक, लेकिन मैं कुछ बोलने लगूं तो मुझ पर पाबंदी ठोक दो."

"निर्मला से कहूं ?"

"कह दो पीठ पर वह लगा देगी."

सांत्वना किचन में नाश्ता तैयार करने चली गयी. श्यामल हाथ, पेट, चेहरा, गर्दन, और पैरों पर उबटन लगाकर मल रहा था. मैल की काली वर्तिकाएं चटाई पर गिर रही थीं. सांत्वना निर्मला से कहना भूल गयी थी. निर्मला का काम समाप्त हो चुका था. हाथ धोकर किचन के पास पहुंच वह बोली, "जा रही हूं बीबीजी."

"बेबे की पीठ पर उबटन मल दिया ?"

"मैं...? खिलखिला उठी निर्मला."

"ओह माय गॉड... मैं तुझे कहना ही भूल गयी."

"क्या बीबीजी ?"

"निर्मला, मेरे लिए थोड़ी तकलीफ कर दे."

"प्याज काटना है ?"

"अरे नहीं... वह मैं कर रही हूं."

"फिर ?"

"अधिक समय न लगेगा... बेबे की पीठ पर उबटन लगाकर मल दे."

निर्मला का मन घिना गया, लेकिन उसने प्रकट नहीं होने दिया. कुछ गंभीर अवश्य हो गयी.

घर की गंद झाड़-पोछ फेंकू ही... अब इनके खाविंद के शरीर की गंद भी निकालूं. लेकिन मना भी करूं तो कैसे. बीबीजी ने पहली बार कुछ कहा है... मेरे लिए भी कुछ न कुछ करती रहती हैं. मना करने से उनका दिल दुखेगा.

"तुम्हें जल्दी है ?"

"बाइस नबंर वाली मुंह बाये बैठी होगी. देर हो जाने पर दस बातें सुनाती है."

"हूंह!" क्षण भर मौन के बाद सांत्वना बोली, "जाओ तुम... मैं ही धीरे से लगा दूंगी."

निर्मला ने इस मध्य निर्णय ले लिया था. बोली, "दस मिनट में कुछ नहीं बिगड़ेगा. सुनाना उसे वैसेई होता है... आप अपना काम

लघुकथा

संकेत

✍ कृष्ण मनु

बाजार से पान सिगरेट लाने से इनकार कर देने के कारण धरनीधर पिऊन से खार खाये हाजरी बाबू ने उचित अवसर देख प्रशासनिक अधिकारी से शिकायत कर दी.

केवल पांच मिनट विलंब से ड्यूटी में उपस्थित होने के कारण धरनीधर की हाजरी काट दी गयी.

- 'साहब, मेरी हाजरी ?'

- 'आज तुम्हारी हाजरी काट दी गयी है चाहो तो सी. एल. दे कर जा सकते हो.'

- 'लेकिन... साहब...'

- 'मुझे कुछ नहीं सुनना. मैंने कहा न सी. एल. दे दो.'

- 'साहब मेरी बात...'

- 'कहा न, मुझे कुछ नहीं सुनना. जाओ, मुझे काम करने दो.'

पारिवारिक समस्याओं से घिरे धरनीधर की सहन शक्ति जवाब दे गयी. वह ऊंची आवाज़ में बोला- 'कैसे नहीं सुनेंगे साहब, आप को मेरी बात सुननी होगी. मैं हमेशा समय पर ड्यूटी आता हूं. इधर दो-तीन दिनों से दो-चार मिनट के लिए देर हो जाती है क्योंकि मेरा पोता जल गया है. उसे डॉक्टर के पास ले जाना पड़ता है. मेरी मजबूरी समझिए साहब !'

- 'तुम अपनी मजबूरी अपने पास रखो. मैंने हाजरी काट दी तो काट दी.'

- 'साहब, काटना मुझे भी आता है.' धरनीधर ऊंची आवाज़ में बोला. वह संवेदनाशून्य अधिकारी के रुक्ष व्यवहार से अपादमस्तक जल उठा. अधिकारी द्वारा लेटलतीफ किंतु, कृपा पात्र कर्मचारियों को छूट देकर केवल उसी को तंग किया जाना उसे नागवार गुज़रा था.

आक्रोश के कारण उसकी आंखें लाल हो आयी थीं, मुट्ठियां कस गयी थीं.

अधिकारी सहम गया. सामने खड़े धरनीधर पर नज़र पड़ते ही ठंडी लहर सी दौड़ गयी उसके भीतर, हाजरी बही पर 'पी' लिखकर उसने दस्तखत कर दिये.

बी ३/३५, मुनीडीह, धनबाद-८२८१२९ (झारखंड)

करें बीबीजी. मैं लगा देती हूं बाबूजी को उबटन." एक क्षण कुछ सोचकर वह बोली, "लेकिन आप बताती रहें..."

"ठीक है." सांत्वना आमलेट के लिए महीन प्याज काट रही थी. प्याज की तीक्ष्णता के कारण उसकी आंखों से आंसू बहने लगे और नाक से पानी. छोटी तौलिया से आंख-नाक पोछ वह मुड़ी, "चल, मैं बताती जाऊंगी... तू लगाती जाना."

श्यामल, सांत्वना और निर्मला का वार्तालाप सुनने का प्रयत्न कर रहा था और सोच रहा था, 'निर्मला घरों में काम करती है... उसके हाथों में ताकत होगी. उम्र में भी वह सांत्वना से चार-पांच साल छोटी होगी... पूरी तरह जवान...' शरीर में उत्तेजना की लहर-सी उसने अनुभव की.

अपने को नियंत्रित कर उसने पुनः सोचा, 'जीवन ने इस लड़की को क्या दिया... न पति सुख न आर्थिक स्वतंत्रता... एक साल पहले पति मर गया... शादी के दो साल बाद ही और यह लोगों के घरों में काम करने के लिए विवश हो गयी. दसवीं तक पढ़ी है, लेकिन नौकरी कहां ! मां-बाप के साथ रहती है, लेकिन उन पर बोझ नहीं बनना चाहती. बाप का महरौली में छोटा-सा घर है. उसकी नौकरी छोटी है... कहीं चपरासी है. बच्चे हैं चार. सबसे बड़ी यह है. सांत्वना ने बताया था एक दिन कि आत्मनिर्भरता और छोटे भाई-बहनों की पढ़ाई में मदद के लिए वह काम कर रही है.'

श्यामल ने निर्मला को ऊपर से नीचे तक देखा. उसे आश्चर्य हुआ कि उसने पहले उसे इस प्रकार क्यों नहीं देखा था. सांत्वना के साथ निर्मला को आता देख वह पैर का उबटन मलने लगा.

सांत्वना निर्मला को बताती रही और वह दोनों गदौलियों में उबटन लगा श्यामल की पीठ पर मलने लगी. कुछ देर बाद जब उबटन सूखने लगा तो उसने ताकत लगा ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर रगड़कर पीठ साफ कर दी. निर्मला के हाथों का संस्पर्श श्यामल को भिन्न अनुभूति देता रहा और उसका मन सांत्वना की परिचित गुदगुदी गदौलियों की रगड़ की अपेक्षा निर्मला की कुछ सख्त, कुछ मुलायम गदौलियों के संस्पर्श से अभिभूत क्षणों के लिए कल्पना की रोमांटिक दुनिया में भ्रमण करने लगा. आंखें बंद किये वह उसी दुनिया में खोया रहता अगर सांत्वना ने टोका न होता.

"बेबेऽऽ... उठो, मैं चटाई-फर्श साफ कर दूं."

"ओह... नहाना पड़ेगा. श्यामल जैसे नींद से जागा."

"पानी भरवा दिया है... कपड़े भी रखवा दिये हैं." किसी बच्चे को समझाने के भाव से सांत्वना बोली, "अब देर मत करो."

श्यामल की आंखें निर्मला को खोज रही थीं, लेकिन वह जा चुकी थी. बेमन श्यामल बाथरूम में घुस गया.

(लेखक के शीघ्र प्रकाश्य उपन्यास 'जाल' का एक अंश)

१०-ए. / २२, शक्तिनगर, दिल्ली - ११० ००७

आमने / सामने

यह तो मेरी 'यात्रा' की शुरुआत है !

✍ डॉ. तेज सिंह

(बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठें खोलना चाहता है. लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने/सामने.' अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नीसिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, सुमन सरीन, फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा और किरण मिश्र से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है डॉ. तेज सिंह की आत्मरचना.)

दिल्ली जो कभी एक शहर था, आज महानगर में तब्दील हो चुका है. एक राजधानी, एक शहर को महानगर में बदलते हुए मैंने अपनी खुली आंखों से देखा और परखा है. दिल्ली के पूरब में मटमैली और एक बड़े ताल में बदल चुकी यमुना के पूरबी किनारे के पास मेरा बड़ा-सा गांव घौंडली जहां मैं पैदा हुआ.

उस समय यमुना मटमैली नहीं, श्यामल थी और मेरे गांव के आसपास कंक्रीट का जंगल नहीं, हरे-भरे दूर-दूर तक फैले खेत थे. नदी पर छोटा बांध था. जब सन ४८ में बाढ़ आयी तो वह टूट गया और उस समय हमें कुछ समय के लिए गांव छोड़ना पड़ा था. कुछ बुजुर्ग गांव की देखभाल के लिए रह गये थे बाकी पास के गांव कड़कड़ी चले गये थे. उस समय मैं दो साल का था और मुझे कुछ याद नहीं था. लेकिन बाढ़ के साथ बह कर आयी रेती के फैलाव को मैंने स्वयं देखा था.

मेरे गांव के लोगों ने ब्राह्मणवादी समाज व्यवस्था के उस नियम को बहुत पहले ही तोड़ दिया था. वे गांव की दक्षिण दिशा में नहीं, चारों दिशाओं में बसे हुए थे. कम से कम दलितों के सौ परिवारों ने गांव को चारों दिशाओं से घेर रखा था. सिर्फ उत्तर के एक कोने में दो भाइयों का एक ब्राह्मण परिवार और उससे सटा मोहरी कुम्हार का परिवार और बीच में पांच-छः गूजर समुदाय के परिवार और बढ़ई और लुहार पास ही खुरेजी खास में थे. नाई पास के गांव कड़कड़ी से आता था. वह कभी-कभी आता पर शादी ब्याह के समय लगातार कई दिनों तक आता. वह दूसरों की बात कम ही सुनता अपने मतलब की बात तुरंत सुन लेता था.

बिरादरी की चौपाल के पास एक गिरजाघर था. एक बड़े से मकान को ही गिरजाघर का रूप दिया गया था. बड़े बरामदे के एक कोने में बड़े से संदूक पर कपड़ों और उसके ऊपर बड़ी सलीब, बाइबिल और मोमबत्ती का स्टैंड था. मेरे होश संभालने तक मैंने कभी प्रार्थना-सभा होती नहीं देखी. आज़ादी से बहुत पहले जब मेरे दादा चौधरी तनसुखराय ने ईसाई धर्म कबूल किया था, उसी समय यह मकान गिरजाघर के रूप में बना होगा. गांव के एक दो परिवारों ने ही ईसाई धर्म कबूल किया था. उस गिरजेघर में मेरी पढ़ाई हुई. सही अर्थों में पढ़ाई नहीं हुई थी बल्कि ज़िंदगी के पांच साल बर्बाद हुए थे. गिरजे के पादरी को हम बाबूजी कहते थे क्योंकि वे एक छड़ी हाथ में लेकर हमें पढ़ाया करते थे. सुबह से लेकर शाम चार बजे तक बिरादरी के सभी लड़के पढ़ते थे. पढ़ते कम बाबूजी के पखाने के मच्छर ज्यादा मारते थे. जब तक बाबूजी ज़िंदा रहे, बड़े दिन पर फतेहपुरी (दिल्ली) के बड़े गिरजाघर से पादरियों सहित अन्य ईसाई यहां आते रहे.

गांव के गिरजाघर की पढ़ाई से जल्दी ही पिंड छूट गया. क्योंकि बाबूजी की मृत्यु हो गयी थी. बिरादरी के सभी बच्चे कृष्णनगर के बड़े स्कूल में दाखिल हो गये थे. पता नहीं क्यों बा (पिताजी) ने मुझे बिरादरी के सभी बच्चों से अलग झील कुरंजा स्कूल में दाखिल करा दिया. सभी बच्चे मुझे चिढ़ाते थे. मेरा मानसिक विकास अलग तरह से होने लगा. लेकिन मैं पढ़ने में अत्यंत कमजोर रहा. सातवीं तक मैं उन नालायक बच्चों में शामिल था जो क्लास में सबसे पिछली सीट पर बैठते थे. सातवीं कक्षा में दो बार फेल होने के बाद कुछ अच्छे सहपाठियों के संपर्क में आने पर मैं पिछली सीट से अगली सीट पर बैठने लगा. यह बहुत बड़ा परिवर्तन था, जहां से मुझ में आत्मविश्वास जागा और मेरी गिनती अच्छे विद्यार्थियों में होने लगी.

अभी कुछ साल पहले दिल्ली विश्वविद्यालय में वी. सी. ऑफिस के सामने धरने पर बैठे हुए एक प्राध्यापक को देखा तो मुझे सातवीं कक्षा में हिंदी पढ़ाने वाले सक्सेना जी की याद हो

आयी. मैं उस घटना को आज तक नहीं भूल पाया और न ही सक्सेना जी को. वही सक्सेना जी जिन्हें शायद किसी प्रश्न का उत्तर नहीं दे पाया था तो उन्होंने पेन्सिल मेरी उंगलियों के बीच में रखकर उंगलियां इतनी जोर से दबा दीं कि मेरे नाखूनों से हल्का-सा खून निकल आया था. परीक्षा में 'गरीबी में आटा गीला' मुहावरे का ग़लत अर्थ लिखने पर मेरा मज़ाक उड़ाया था. मुझे बहुत शर्म महसूस हुई जिससे अन्य प्रश्न भी ठीक से नहीं कर पाया था.

आज जब मैं उस प्रसंग को याद करता हूं तो यह सोचकर संतोष कर लेता हूं कि अगर वहां बा मुझे दुबारा ले गये होते तो शायद आज मैं वही नहीं होता जो आज हूं. यह सन ५७-५८ की बात होगी. दरियागंज में बिजली ऑफिस के पास जहां आजकल फायर बिग्रेड का स्टेशन है, वहां एक डेंटिंग-पेंटिंग की वर्कशॉप होती थी और बा काम सिखाने के लिए मुझे एक बार ले गये थे पर पता नहीं क्यों दुबारा नहीं ले गये. नहीं तो मैं आज पता नहीं कहीं डेंटिंग-पेंटिंग की वर्कशॉप में काम कर रहा होता. उस घटना को लेकर आज जब मैं सोचता हूं तो पाता हूं कि मेरा जीवन बर्बाद होने से बच गया. हो सकता है वे मुझे एक कारीगर बनाना चाहते रहे हों. शायद उन्हें लगता हो कि मैं मोटर मैकेनिक बनकर अच्छी आमदनी पा सकता था. उनके दिमाग में क्या रहा होगा, मैं नहीं जान सका. लेकिन वे मुझे दुबारा उस वर्कशाप में नहीं ले गये.

सन् ६० में बैसाखी के दिन मेरी शादी हुई. उस समय मेरी पांचवी की परीक्षाएं चल रही थीं. उन दिनों बारात तीन दिन ठहरती थी. जब बारात तुगलकाबाद पहुंची तो शाम के समय तेज आंधी के साथ ओले पड़े. अगले दिन मैं बारात से ताऊजी के बड़े लड़के के साथ पेपर देने गीता कॉलोनी पांच ब्लाक के स्कूल में आया था पर घर नहीं गया. शादी के समय मेरी उम्र चौदह साल की रही होगी. इस शादी के पीछे भी एक घटना जुड़ी हुई है. सन् ५५-५६ की बात रही होगी. ताऊजी के लड़कों का गौना था और उसमें मैं भी गया था. अगले दिन दस बजे के आस-पास एक घटना घटी जिसका मेरी शादी से गहरा संबंध है. हम सभी एक बड़े कमरे में बैठे हुए थे और एक हवा में उड़ाने वाली लोहे की फिरकनी से मैं खेल रहा था. मेरी फिरकनी उड़कर दरवाजे के बाहर गिरी तो एक दुबली-पतली गोरी-चिट्टी लड़की उसे उठाकर भाग खड़ी हुई. मैं गुस्से से उसके पीछे भागा और पंद्रह बीस कदम की दूरी पर उसे पकड़ लिया और उसे पकड़कर अपनी फिरकनी छीनकर अपने कमरे में आ गया. इस घटना को सभी देख रहे थे. लगता है उसी समय दोनों पक्षों ने तय कर लिया होगा कि यह जोड़ी ठीक रहेगी. क्योंकि कुछ दिनों बाद मेरी उससे सगाई हो गयी थी. सगाई के समय मैंने हल्का-सा

१३ जुलाई १९४६, घौंडली (दिल्ली)
एम. ए. (हिंदी), एम. फिल., पी-एच. डी.

प्रकाशित कृतियां : *'नागार्जुन का कथा साहित्य,' 'राष्ट्रीय आंदोलन और हिंदी उपन्यास', 'आज का दलित साहित्य,' 'जब्त शुदा चिंगारियां' (उग्र की कहानियों का संपादन), 'आज का समय' (दलित कवियों की कविताओं का संपादन).*

कार्यरत : *'उत्तरशती हिंदी कहानी और समकालीन जीवन,' 'दलित साहित्य का समाज शास्त्र', 'उपनिवेशवाद-राष्ट्रवाद और हिंदी उपन्यास' (यू. जी. सी. की परियोजना के अंतर्गत), देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में अनेक आलोचनात्मक लेख प्रकाशित.*

विविध : *अध्यक्ष - 'दलित लेखक संघ', सीनेट सदस्य - 'बुद्धा सोसायटी', अध्यक्ष - 'दलित बुद्धिजीवी समिति,' 'भारतीय सामाजिक संस्थान' दिल्ली.*

संप्रति : *प्राध्यापक (अनुसंधान वैज्ञानिक), हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय.*

प्रतिवाद किया था और उस समय कुछ देर के लिए घर से बाहर खेतों में चला गया था. परंतु मुझे पकड़कर लाया गया और सगाई की रस्म पूरी की गयी.

मेरी मर्जी के खिलाफ पांच साल बाद मेरा गौना कर दिया गया जबकि मैं पढ़ना चाहता था. उस समय मैं नवीं कक्षा में पढ़ रहा था. उसके बाद पढ़ाई से मन उचटने लगा और दसवीं की परीक्षा नहीं दी. फिर मेरा आर्ट कॉलेज में डिग्री हासिल करने का और दिल्ली के मेरे ड्राइंग टीचर का सपना धूमिल हो गया. मैं एक आर्टिस्ट बनना चाहता था. शादी की मेरी बिल्कुल इच्छा नहीं थी, इसलिए पत्नी से मेरा कोई लगाव नहीं रहा. सचमुच उसके

साथ बहुत अन्याय हुआ था. वह बहुत दुखी थी. मेरे कड़े रुख से दुखी होकर बा ने ख़बर भेज दी थी कि अपनी लड़की को कहीं दूसरी ज़गह बैठा दें. मगर उस समय पत्नी ने दूसरी ज़गह बैठने से इंकार कर दिया और संबंध बने रहे. लेकिन उन संबंधों का कोई अर्थ नहीं रह गया था. वह अपने घर चली गयी. तीन-चार साल बाद पता नहीं कैसे मेरा रुख नरम हुआ, तो संबंध सामान्य हुए पर मधुर नहीं रहे. हम दोनों में कड़वाहट अंदर गहरे तक भरी हुई थी.

आज भी जब कभी हम दोनों में किसी बात पर मन-मुटाव होता है तो वह कड़वाहट बाहर आ जाती है फिर विद्या कई दिनों तक सामान्य नहीं रह पाती. वह बहुत भावुक और संवेदनशील हैं. ज़िंदगी के अंतिम पड़ाव पर हम उन बुरे दिनों को भूल जाना चाहते हैं. लेकिन कभी-कभी उन दिनों की याद आती है तो मन ग्लानि से भर जाता है. क्योंकि उसने अपने वे सुनहरे दिन सारी रात रो-रोकर और जागकर काटे हैं. मैंने जानबूझकर उसे कष्ट नहीं दिये, जो कुछ भी हुआ वह अनजाने में ही हुआ है. कभी - कभी मुझे लगता है कि अगर पत्नी ने उस समय दूसरी ज़गह बैठने का निर्णय ले लिया होता तो वह इन बेवज़ह के कष्टों से बच जाती. इसलिए कभी मैं पत्नी को दोषी मानता हूं. कभी बा को तो कभी अपने आपको दोषी ठहराने लगता हूं. इसके बावजूद वह अपने निर्णय को सही ठहराती है और उसे संतुष्टि है. उसे अफसोस नहीं है. मुझे लगता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने परिवारगत संस्कारों और परिस्थितियों के दबाव में निर्णय लेता है और उस निर्णय के सही या ग़लत होने का मूल्यांकन वह बाद में करता है. अगर निर्णय सही हुआ तो उसे खुशी होती है और अगर ग़लत साबित हुआ तो ज़िंदगी भर पछतावा रहता है.

अगर विद्या ने मुझे सहयोग न दिया होता और परिवार की जिम्मेदारियों से मुक्त न रखा होता तो मैं आज जिस स्थिति में हूं वहां नहीं पहुंच पाता. उसका मूक पर सक्रिय सहयोग मुझे कुछ करने के लिए उत्साहित करता रहा है. परिवार के लिए भी उसने आधा जीवन बर्बाद किया है. मेरे सभी छोटे भाइयों को इस बात का अहसास है, खासतौर से मेरे छोटे भाई रामलाल मौर्य और लालचंद को आज भी उसके साथ की गयी ज्यादतियों का अहसास है. वे उसे सम्मान भी देते हैं. सबसे छोटे भाई सतीश में जितना गुस्सा है उतनी भावुकता भी है. वह अधिकांश फैसले भावुकता में ही करता है. विद्या मां के साथ गहरे स्तर पर जुड़ी है तथा मां के प्रति ज्यादा संवेदनशील भी है.

एम. फिल. के दौरान मार्क्सवादियों से संपर्क बढ़ा. ज़नवादी लेखक संघ के साथ भी उन्हीं दिनों जुड़ा और लगभग दस-बारह साल तक जुड़ा रहा. जे. एन. यू. के मार्क्सवादी छात्र दिल्ली विश्वविद्यालय से आये छात्रों को हेय दृष्टि से देखते थे. परंतु मेरे लिए उनका व्यवहार सम्मानजनक रहा. सन ८२ में, प्यारेलाल भवन आई. टी. ओ. में जनवादी लेखक संघ के अधिवेशन में पहली बार बड़े-बड़े साहित्यकारों से संपर्क हुआ. नागार्जुन और त्रिलोचन शास्त्री जी से उस अधिवेशन में मुलाकात हुई. एम. ए. फाइनल के दौरान चंद्रभान और गोविंद प्रसाद से घनिष्ठता बढ़ी जो आत्मीयता के स्तर तक पहुंच गयी. मैं उन दिनों मार्क्सवाद का अध्ययन कर रहा था जबकि चंद्रभान बहुत पहले कर चुका था. हम दोनों मार्क्सवादी विचारधारा के प्रबल समर्थक थे, जबकि गोविंद प्रसाद अज्ञेयवादी-कलावादी. इसलिए हमारी बहस गोविंद प्रसाद से होती थी. गोविंद अवसरवादी रुख अपनाता था और हम मार्क्सवादी. यह अवसरवाद गोविंद प्रसाद में आज तक बना हुआ है. लेकिन उसमें कला-संगीत की अच्छी पकड़ है. कविताएं भी अच्छी लिख लेता था. एक अच्छे कवि के गुण और काव्य प्रतिभा हमारे सभी साथियों में सबसे ज्यादा उसी में थी. उसकी हम सभी तारीफ भी करते थे. स्कूल इंस्पेक्टर बनने के बाद चंद्रभान की साहित्यिक रुचि कम हो गयी और फिर धीरे-धीरे साहित्य जगत से पूरी तरह कट गया जबकि गोविंद प्रसाद जे. एन. यू. प्राध्यापक बनकर साहित्य में अपना स्थान बनाने में जुट गया.

एम. फिल. में एडमीशन लेने के लिए हम तीनों त्रिलोचन जी के साथ प्रो. नामवर सिंह जी के घर जे. एन. यू. गये. उनकी सिफारिश से मेरा एम. फिल. में एडमीशन हुआ लेकिन मैंने एम. फिल. और पी-एच. डी. प्रो. सावित्रीचंद्र 'शोभा' के निर्देशन में की. चार-पांच साल हम दिल्ली विश्वविद्यालय की नॉन कॉलिजियेट बिल्डिंग के लॉन में त्रिलोचन जी के साथ कई-कई घंटे बैठते थे. एक साथ कई-कई चाय पी जाते थे. त्रिलोचन जी के सान्निध्य में हमने बहुत कुछ सीखा. वहीं हमने हिंदी, उर्दू और पंजाबी के प्राध्यापक तथा रिसर्च स्कॉलरों के साथ मिलकर 'सृजन अध्ययन मंडल' बनाया जो ज्यादा दिन नहीं चल पाया. वहीं पर अजय तिवारी, द्वारिका प्रसाद 'चारु मित्र', रमेश ऋषिकल्प, विनय विश्वास, बली सिंह, गोविंद प्रसाद और चंद्रभान आदि साथियों से घनिष्ठ साहित्यिक संपर्क बना.

हम सभी जनवादी लेखक संघ से जुड़े हुए थे. उन दिनों जलेस की मीटिंगें बाबा खड़ग सिंह मार्ग स्थित बंगाल सूचना केंद्र की पहली मंज़िल के बड़े हाल में होतीं. वहीं फर्श पर दरी पर बैठकर गोष्ठियां होती थीं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी पर गोष्ठी हो रही थी और वहां बैठने के लिए ज़गह नहीं बची थी. थोड़ी सी ज़गह बनाकर हम सभी बैठ गये. सुधीश पचौरी ने 'उसने कहा था' कहानी के संदर्भ में मेरा नाम लेकर कहा कि वे हाल में मौजूद हैं और उन्होंने इस कहानी को शिल्प की दृष्टि से अपने से बीस साल आगे की कहानी कहा है. कुछ लोगों का ध्यान मेरी तरफ

गया. उस समय मेरी स्थिति बड़ी विचित्र हो गयी थी. क्योंकि मैंने अभी लिखना शुरू नहीं किया था और आलोचना में हस्तक्षेप की तैयारी कर रहा था.

मैं आज भी मानता हूं कि हिंदी कथा-साहित्य में गुलेरी की 'उसने कहा था' और अज्ञेय की 'खोज़' कहानी कथ्य और शिल्प की दृष्टि से अपने समय से बीस साल आगे की कहानियां हैं. कहानी-आलोचना की प्रेरणा मुझे उपेंद्रनाथ 'अश्क' की कहानी आलोचना पुस्तक 'कहानी के इर्द-गिर्द', 'मन्टो मेरा दुश्मन' तथा अन्य कहानी आलोचना पुस्तकों से मिली. आलोचना पढ़कर मैं कहानी की ओर मुखातिब हुआ. फिर कहानियां पढ़कर और उसके बाद उनकी आलोचना. इस तरह कहानी-आलोचना का द्वंद्व लगातार चलता रहा. शेखर जोशी की कहानियों पर पहला आलोचनात्मक लेख १९८९ में 'युद्धरत आम आदमी' में प्रकाशित हुआ. मज़ेदार बात यह है कि मैं कहानीकार बनना चाहता था. एक कहानी कृष्ण नगर से निकलने वाली बहुत ही साधारण सी पत्रिका में प्रकाशित हुई. सन् ७४-७५ में एक साहित्यिक गोष्ठी में 'संप्रेषण का संकट : मुक्तिबोध के संदर्भ' में विषय पर सप्रू हाउस में से. रा. यात्री से मुलाकात हुई थी. पहली बार नामवर सिंह जी को वहां देखा था. एक कहानी लिखकर मैं से. रा. यात्री के पास गाजियाबाद गया था. कहानी पर उनकी प्रतिक्रिया इतनी तीखी थी कि मैंने फिर कहानी लिखने की ओर ध्यान नहीं दिया. मेरा मोहभंग हो गया. इससे पहले यात्री की कहानियों पर एक लंबा आलोचनात्मक पत्र लिख चुका था. 'गार्जियन' कहानी पर अश्क जी की टिप्पणी से मतभेद रखते हुए. उन दिनों अश्क जी दिल्ली में थे और उनसे अपनी शिकायत करने का आग्रह यात्री जी ने मुझसे किया था. मुझमें उतना सामर्थ्य और हिम्मत कहां थी कि मैं अश्क जी जैसे प्रतिष्ठित लेखक से बात कर सकूं.

जनवादी लेखक संघ से मैं पूरी तरह जुड़ गया था और मेरा सारा समय उसके मुख्य कार्यालय विट्ठल भाई पटेल हाउस, रफी मार्ग पर ही गुज़रता. सफ़दर हाश्मी की मृत्यु के बाद 'सहमत' संगठन को कमरे का पिछला हिस्सा उन्हें दे दिया था. बीच का दरवाज़ा खोल दिया गया. इससे सफ़दर की पत्नी माला हाश्मी, बहन शबनम और माताजी आकर बैठ जातीं और उनके साथ नुक्कड़ नाटक के सभी कलाकार साथी भी. उससे धीरे-धीरे हमारी परेशानियां बढ़ गयी थीं. अंततः बीच का दरवाज़ा बंद कर दिया गया.

जलेस कार्यालय में ही गोष्ठियां होती थीं. कभी बीस तो कभी तीस चालीस साहित्यकार आ जाते थे. चंचल चौहान, कांतिमोहन, रेखा अवस्थी, डॉ. माहेश्वर से परिचय बढ़ता गया. उस समय तक सुधीश पचौरी पार्टी से दो साल की छुट्टी लेकर चले गये तो फिर कभी नहीं लौटे. मेरा उनसे संपर्क लगातार हो रहा था. डॉ. माहेश्वर से भी आत्मीयता बढ़ी तो उनके नये कहानी-संग्रह 'मास्टर सेवाराम का सपना' पर मैंने अपना पहला आलेख पाठ किया. दूसरा आलेख पाठ कथाकार रमेश उपाध्याय ने किया जो समीक्षा के रूप में 'हंस' पत्रिका में पहले ही छप चुका था. आज डॉ. माहेश्वर हमारे बीच नहीं हैं परंतु उनकी स्मृति आज भी साथ है.

संगठन में पार्टी स्तर पर 'नया पथ' त्रैमासिक पत्रिका को लेकर विवाद बढ़ गया था. अजय तिवारी, डॉ. महादेव साहा और डॉ. चंद्रबली सिंह के साथ हो गये. मैं चंचल चौहान के साथ. जब विवाद ज्यादा बढ़ गया (उसमें अजय तिवारी की भूमिका नकारात्मक रही) तो पत्रिका निकालने की जिम्मेदारी चंचल जी पर आ गयी. हम दोनों की देखरेख में 'नया पथ' के चार अंक प्रकाशित हुए. इसके साथ ही अजय तिवारी का गुस्सा बढ़ता गया और वह प्रत्येक पर अनावश्यक टीका-टिप्पणी करने लगा. चंचल चौहान के साथ सहयोग देने के कारण वह मुझे भी अपना दुश्मन मानने लगा पर व्यवहार में वह गले मिलकर मित्रता का ढोंग करता. उसके चरित्र की यह सबसे बड़ी खूबी है. उसके बारे में यह आम धारणा बन गयी थी कि वह 'जलेस' में एक व्यक्ति को लाता है तो चार छोड़कर भाग खड़े होते हैं. उसी की वज़ह से लेखकों के आई. टी. ओ. ग्रुप और यूनिवर्सटी गुट बन गये थे. मैंने उस पर गुटबंदी का आरोप लगाया तो वह बिफर पड़ा. उसकी वज़ह से ही अख़बारों से जुड़े लेखकों ने जलेस की गोष्ठियों में आना छोड़ दिया. यही कारण है कि आज जलेस की गोष्ठियों में सिर्फ पंद्रह-सोलह या कभी पांच-छः लेखक ही आ पाते हैं.

जनवादी लेखक संघ की दिल्ली इकाई से अलग होकर चंचल चौहान केंद्र में चले गये और अजय तिवारी और रेखा अवस्थी की गुटबंदी से मैं भी बाहर आ गया. इस तरह जलेस की दिल्ली इकाई पर रेखा अवस्थी, अजय तिवारी और चंद्र बली सिंह का कब्जा हो गया तो जलेस बिखरने लगा. जलेस से अलग होने के बाद... उसका मुख्य कारण रेखा अवस्थी और अजय तिवारी ही थे... मैंने अपना आलोचनात्मक लेखन प्रारंभ कर दिया. अपना सारा ध्यान पढ़ने-लिखने पर केंद्रित किया. मेरी पूर्व स्थिति पर एक बार सुधीश पचौरी ने टिप्पणी की थी कि जिस प्रकार चंचल चौहान जलेस में एक बाबू बन कर रह गये हैं कुछ दिन बाद मेरी भी वैसी ही स्थिति हो जायेगी. जलेस से अलग होने पर मुझे अध्ययन और लेखन का पर्याप्त लाभ मिला. मेरे आलोचनात्मक लेख निरंतर प्रकाशित होने लगे.

इन्हीं दिनों दलित साहित्य पर काफी चर्चा हो रही थी. मैं दलित साहित्य पढ़ना चाहता था. एक दिन विश्वासनगर स्थित

'समता प्रकाशन' गया और पंद्रह-सोलह सौ रुपयों की पुस्तकें खरीदीं. प्रकाशन के मालिक ने उस समय कहा कि यदि मैं पंद्रह-बीस मिनट रुकूं तो मेरी मुलाकात डॉ. कुसुम वियोगी से हो सकती है. डॉ. वियोगी समर्पित दलित साहित्यकार हैं, यह मुझे मालूम था. डॉ. वियोगी के आने पर उनसे मेरा परिचय हुआ. वे अत्यंत प्रसन्न हुए. उन्होंने अपने घर बुलाया, जहां डॉ. जयप्रकाश कर्दम से मेरी मुलाकात हुई. मैंने उन्हें स्पष्ट किया कि मैं जनवादी लेखक संघ छोड़कर आया हूं और दलित साहित्य का अध्ययन और उस पर लिखना चाहता हूं. उन्होंने जनवादियों पर आरोप लगाने प्रारंभ किये. मैंने धैर्यपूर्वक उन्हें सुना. बहस लंबी चली. उनके कुछ भ्रम मेरे तर्कों से टूटे. इस प्रकार मैं दलित साहित्य और साहित्यकारों के निकट आया. दलित साहित्यकारों से प्रारंभिक परिचय करवाने में डॉ. कुसुम वियोगी का योगदान कभी नहीं भूल सकता.

लगभग चार वर्ष पहले तीन संयोजक बनाकर दिल्ली के दलित साहित्कारों ने दलित लेखक संघ की स्थापना की. उसमें एक संयोजक डॉ. श्योराज सिंह बेचैन 'दलित राइटर्स फोरम' बनाकर अलग राग अलापने लगे और शेष दो - डॉ. शत्रुघ्न कुमार और डॉ. कुसुम वियोगी एकाध गोष्ठी करके निष्क्रिय हो गये. दलित लेखक संघ को एक जनतांत्रिक ढंग से खड़ा करने और चलाने के लिए मैंने व्यक्तिगत रूप से दलित साहित्यकारों से संपर्क किया. सबके पते और फोन नंबर डॉ. वियोगी ने ही दिये. उसमें डॉ. जयप्रकाश कर्दम की भूमिका भी महत्वपूर्ण रही.

जे. एन. यू. के प्रो. तुलसी राय, डॉ. विमल थोरात, डॉ. शत्रुघ्न कुमार, कर्मशील भारती, रजनी तनवर, सूरजपाल चौहान, जयप्रकाश कर्दम, पन्नालाल और सुरेश तनवर से संपर्क करके कभी डॉ. कुसुम वियोगी के घर तो कभी आर. के. पुरम स्थित बौद्ध विहार में लगातार मीटिंगे करके संगठन बनाने की कोशिश की. कई बैठकों में सही तरीके से दलित लेखक संघ का पुनर्गठन किया गया. लंबी कशमकश के बाद सभी ने मुझे अध्यक्ष बना दिया.

इस दौरान डॉ. जयप्रकाश कर्दम ने अपने व्यक्तिगत प्रयत्नों से दलित साहित्य की वार्षिकी निकालने का सार्थक निर्णय किया. इस कार्य में उन्होंने मेरा सहयोग लिया और मुझे उसके संपादक मंडल में सम्मिलित किया. अन्य साहित्यकारों का सहयोग भी उन्होंने लिया. वार्षिकी अप्रैल १९९९ में प्रकाशित हुई. उसके लिए मैंने उस वर्ष 'दलित कथा साहित्य' पर आलोचनात्मक लेख लिखा. इसी दौरान मेरी दो आलोचनात्मक पुस्तकें भी प्रकाशित हुईं- 'आज का दलित साहित्य' और 'राष्ट्रीय आंदोलन और हिंदी उपन्यास'.

'आज का दलित साहित्य' पुस्तक का लोकार्पण कार्यक्रम अक्तूबर २००० में दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में हुआ. जिसकी अध्यक्षता और लोकार्पण हंस के संपादक और वरिष्ठ कथाकार राजेंद्र यादव ने की. इसमें डॉ. रूपसिंह चंदेल और रजनी तिलक ने आलेख पढ़े. डॉ. जयप्रकाश कर्दम, डॉ. बेचैन, डॉ. राजकुमार सैनी, डॉ. चंचल चौहान, रमणिका गुप्ता आदि ने विचार व्यक्त किये थे. यद्यपि राजेंद्र यादव से मेरा परिचय बहुत पहले से था, लेकिन इस कार्यक्रम के पश्चात उनका नैकट्य मुझे अधिक मिला.

दलित लेखकों से जुड़ने के बाद दलित साहित्य पर गंभीरता से आलोचनात्मक कार्य प्रारंभ हुआ. पिछले दो वर्षों में साथियों के दबाव में इतना लिखा गया जितना पिछले दस वर्षों में नहीं लिखा था. आलोचनात्मक लेखन की वज़ह से ही दलित साहित्य में पहचान बनी जिससे सूरजपाल चौहान जैसे स्तरीय कहानीकार मुझसे चिढ़ने लगे. शायद इसका एक कारण यह भी था कि सूरजपाल चौहान के पहले कहानी संग्रह पर मैंने खुलकर आलोचनात्मक टिप्पणी की थी. आलोचना बर्दाश्त करने की क्षमता कम ही लेखकों में होती है. दलित साहित्यकारों और उनकी कहानियों पर की गयी टिप्पणी से दलित साहित्य में नया विवाद उत्पन्न हुआ. परिणामस्वरूप 'वर्तमान साहित्य' के एक अंक में सुनियोजित रूप से एक लेख लिखकर एक अति महत्वाकांक्षी लेखक ने मुझ पर व्यक्तिगत हमला किया. उसके अगले अंक में सूरजपाल चौहान ने मुझे ही केंद्र में रखकर लंबा आलेख लिखा. यह सिलसिला कई अंकों तक चला. हालांकि कुछ लेखकों-मित्रों-पाठकों ने मेरे पक्ष में पत्र लिखकर हमला करने वालों को उत्तर भी दिया, लेकिन इस पूरे विवाद में मैंने चुप रहना ही उचित समझा था. आज एक सक्रिय लेखक को उखाड़ने-विचलित करने के लिए विकृत महत्वाकांक्षी लेखक किस प्रकार का षड़यंत्र रचते हैं यह सभी जानते हैं और ऐसे षड़यंत्र के चेहरे भी वे पहचानते हैं. मेरे बिना कुछ कहे ही मेरे विरोधी बेनकाब हो रहे थे. यह मुझ जैसे गुटविहीन व्यक्ति के लिए संतोष की बात थी.

पढ़ाई-लिखाई की लंबी प्रक्रिया में मुझे व्यक्तिगत तो नहीं, लेकिन पारिवारिक नुकसान भी हुआ. मैं अपने पहले दोनों बच्चों अनिता और संजय की ओर ठीक से ध्यान नहीं दे पाया, जिसके कारण वे अधिक पढ़ नहीं सके. मुझे इसका अफ़सोस रहेगा. वे मेरे कारण ही समुचित शिक्षा पाने से वंचित रहे. लेकिन मेरे बाकी बच्चे अच्छी तामील हासिल कर रहे हैं. मीना राजनीति विज्ञान में पी-एच. डी. कर रही है तो ममता ड्रेस डिजाइनिंग का कोर्स पूरा कर रही है. छोटा बेटा आलोक दिल्ली विश्वविद्यालय से बी. आई. टी. कर रहा है. बड़ी बेटी अनिता का बड़ा बेटा मृत्युंजय आनंद हमारे पास रहकर पढ़ रहा है, जो बहुत ही तेज-तर्रार और बुद्धिमान है. छोटा नाती संभव अभी मुस्कराकर अपनी

बात कहना सीख रहा है. यह सही है कि अपनी सफलताओं के चलते मैं परिवार की ओर ठीक से ध्यान नहीं दे पाया. मुझे अपने परिवार से कोई शिकायत नहीं है, लेकिन उन्हें मुझसे अवश्य होगी. मेरे परिवार ने मेरे लिए बहुत कुछ खोया है जिसकी भरपाई संभव नहीं है. इसके बावजूद मैंने भरपूर जीवन जिया है और इस दौरान अपने अनेक दोस्त और दुश्मन बनाये हैं. मेरा जीवन यों ही चलता रहा है. मैं सरलता और सहजता में विश्वास करता रहा हूं और बिना ईमानदारी के जीवन में सरल और सहज नहीं हुआ जा सकता. आज मैं इस बात से संतुष्ट हूं कि अध्यापन के बाद का समय अध्ययन और लेखन को देता रहा हूं. 'दलित साहित्य का समाजशास्त्र' पर कार्य कर रहा हूं. साथ ही यू. जी. सी. की परियोजना के अंतर्गत उपनिवेशवाद-राष्ट्रवाद और हिंदी उपन्यास पर भी कार्य चल रहा है. अनेक योजनाएं मस्तिष्क में हैं. लेकिन मैं मानता हूं कि यह तो मेरी शुरुआत है... उस यात्रा... की जिस पर मुझे अथकित चलते जाना है... चलते ही जाना होगा...

२७, घौंडली, कृष्ण नगर, दिल्ली-११० ०५१

'कथाबिंब' को शुभकामनाएं

नीपा रंगमंडली

सृजनशील रंगकर्म के लिए
प्रतिबद्ध
अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त
नाट्य संस्था

संपर्क : सी - ११, सेक्टर-आई,
अलीगंज, लखनऊ - २२६ ०२४
फोन : ३२४७१, ७८२१८७
ई-मेल : nipasurya@rediffmail.com

लघुकथाएं

जवाब

✍ डॉ. प्रद्युम्न भल्ला

बस खचाखच भरी हुई थी. पांव रखने तक की ज़गह न थी. मैं बड़ी मुश्किल से एक सीट ले पाया था.

'हटो-हटो अबे पीछे हट जाओ. देखते नहीं साहब आ रहे हैं.' एक सिपाही लोगों को हटाता हुआ बस के पास आया.

उसे दरवाजे की ओर बढ़ते देख, दरवाजे पर खड़े लोग पीछे हट गये. एक-दो नीचे भी उतर गये. सिपाही ने बस के अंदर घुस कर पूरी बस का मुआयना किया. उसकी नज़र एक बूढ़े पर जाकर ठहर गयी. तीनों सीटों पर बूढ़ा, उसका लड़का और उसकी घरवाली बैठे हुए थे.

"चल-बे, सीट छोड़ दे यहां साहब बैठेंगे." वह बूढ़े से बोला. "बेटा- मैं बूढ़ा आदमी भला..."

"अबे सुना नहीं, साहब बैठेंगे. जल्दी खड़ा हो," वह गुर्राया.

"क्यों साहब, हमने भी तो टिकट ली है." अब की बार उसका लड़का बोला.

"अच्छा अबे तेरी तो," पुलिस वाले ने डंडे वाला हाथ लहरा कर उसकी तरफ बढ़ाया और किसी ने पीछे से उसकी बांह पूरी ताकत से पकड़ ली.

"बस साहब, हाथ आगे बढ़ाया, तो हाथ तोड़कर रख दूंगा. अपने हक के लिए लड़ना और जादतियों के लिए हम पर उठे हाथ को तोड़ना हमें अच्छी तरह आता है."

पुलिस वाले ने पीछे मुड़कर देखा, तो पंद्रह बीस लोग कमीजों की आस्तीनें ऊपर चढ़ा रहे थे.

पुलिसवाला चुप-चाप नीचे उतर गया.

उसके लिए

नरेन बहुत अच्छा अध्यापक माना जाता है. उसने अध्यापन को पेशा नहीं बल्कि अपना शौक मान कर चुना. वह अनुशासन प्रिय व सख़्त है. अपने उसूलों का वह बहुत पक्का है. विद्यार्थी उससे बहुत डरते हैं मगर साथ-साथ उसे पसंद भी बहुत करते हैं.

उस दिन उसने कहा कि सभी विद्यार्थी अपनी-अपनी कॉपियां ले कर आयेंगे. एक विद्यार्थी नहीं ले कर आया. उसने उसे अगले दिन लाने को कहा मगर अगले दिन भी वह नहीं ला पाया.

विवेक, तुम्हारी कॉपी कहां है? ले कर क्यों नहीं आये ?

"जी वो...," वह रुंआसा हो उठा.

नरेन को गुस्सा आ गया. मारने को हाथ उठाया ही था कि एक छात्र बोल उठा- "सर, इसका तो घर जल गया था." बेचारे बरबाद हो गये. सब कुछ जल गया.

सब कुछ जल गया तो कॉपी कहां से बची होगी. मैंने अपने दिल में सोचा, 'हे भगवान, यदि हाथ उठ जाता तो...' और उसके लिए नरेन हृदय में रो पड़ा.

५०८, सेक्टर-२०, अर्बन एस्टेट, कैथल - १३६०२७

सागर / सीपी

हिंदी के प्रकाशकों को सामान्य पाठकों की चिंता नहीं रहती

- डॉ. रामधारी सिंह 'दिवाकर'

('कथाबिंब' के लिए रामधारी सिंह 'दिवाकर' से सिध्देश्वर की भेंटवार्ता)

[१ जनवरी, १९४५ को नरपतगंत, अररिया बिहार में जन्मे डॉ. दिवाकर, एम. ए., पी एच. डी. की शिक्षा प्राप्त कर, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना के निदेशक के रूप में कार्यरत हैं. इसके पूर्व वे मिथिला विश्वविद्यालय (दरभंगा) के स्नातकोत्तर हिंदी विभाग में प्रोफेसर भी रह चुके हैं.

जून ७१ में 'नयी कहानियां' में उनकी पहली कहानी के प्रकाशन के बाद तथा उसी वर्ष 'धर्मयुग' में 'तुलादंड' कहानी के प्रकाशन से लेकर अब तक सौ से अधिक कहानियां तथा चार उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं.

ग्रामीण-जीवन में आये बदलाव को कहानियों और उपन्यासों में उकेरने की उन्होंने ईमानदार कोशिश की है. रेणु से आगे के ग्रामीण यथार्थ को आपने सशक्तता से शिल्पित किया है और इस रूप में उनकी खास पहचान बनी है. "नये गांव में," "अलग-अलग अपरिचय," "बीच से टूटा हुआ," "नया घर-चढ़े," "सरहद के पार," "धरातल," "मखान पोखर," "माटी-पानी" (सभी कहानी संग्रह) तथा "क्या घर, क्या परदेस," "काली सुबह का सूरज" "पंचमी तत्पुरुष", "आग-पानी, आकाश" उपन्यास का प्रकाशन हो चुका है.]

● आजकल आप क्या लिख रहे हैं ?

इधर एक-डेढ़ साल से मैं उपन्यास पर काम कर रहा हूं. पिछले दस-बारह वर्षों से पूरे देश में राजनीतिक-सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों में जो आकस्मिक और अप्रत्याशित बदलाव आये हैं, इन बदलावों ने समाज के पुराने ढांचे को तहस-नहस कर दिया है. पिछड़े हुए लोग, दलित जातियां और वंचितों का विशाल समूह सत्ता की कैद में पहुंच गया है. इससे सत्ता-व्यवस्था चरमरा गयी है. इस नयी व्यवस्था के शुभ पक्ष भी हैं और अशुभ पक्ष भी लेकिन मेरी मान्यता है कि इसके संकेत शुभ हैं. भले अभी अशांति और उत्पात के दृश्य दिख रहे हों. कुछ ऐसा ही विषय मैंने अपने लिखे जा रहे उपन्यास 'अकाल संध्या' के लिए चुना है. पुराने सामंतवाद की ज़गह नयी सामंती व्यवस्था के विद्रूप को भी मैंने अपनी सोच के दायरे में रखा है.

● इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के युग में पाठकों का रूझान लंबी कहानियों अथवा उपन्यासों के प्रति कम होता जा रहा है ? ऐसे में उपन्यासों का क्या भविष्य है ?

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने पढ़ने की रुचि को निश्चित रूप से प्रभावित किया है. लंबी कहानियों अथवा उपन्यासों के पाठक बहुत घट रहे हैं. मीडिया का सबसे बड़ा दुष्प्रभाव यह पड़ा है कि इसने भविष्य का पाठक हमसे छीन लिया है. मेरा मतलब नयी पीढ़ी से है जो गंभीर साहित्य के संस्कार से विहीन हो गयी है. परिवार में पत्र-पत्रिकाएं अथवा किताबें पढ़ने का जो वातावरण इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के प्रवेश के पहले था, वह अब रहा नहीं. टी. वी. पर विभिन्न चैनलों से प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों के कारण उपन्यास आदि गंभीर साहित्य के अध्ययन के लिए समय ही नहीं रहा. फिर भी उपन्यास और लंबी कहानियां लिखी जा रही हैं और पाठकों का एक वर्ग इसे पढ़ता ही है.

● आंचलिक उपन्यासों को ही 'चर्चा' के केंद्र में क्यों रखा जा रहा है ?

ऐसा नहीं है कि आंचलिक उपन्यासों को ही चर्चा के केंद्र में रखा जाता है. इसके विपरीत यह कहना ज्यादा उचित होगा कि अब आंचलिक उपन्यासों की अपेक्षा आनांचलिक उपन्यासों की चर्चा ही अधिक हो रही है. पिछले दिनों मैत्रेयी पुष्पा के 'चाक' उपन्यास को ही चर्चित आंचलिक उपन्यास कह सकते हैं. बाकी अलका सरावगी, विनोद कुमार शुक्ल, कामतानाथ, गिरिराज किशोर, कौशल्या वैसंत्री, चित्रा मुदगल आदि के लिखे उपन्यास जो चर्चा में रहे, वे आंचलिक नहीं हैं. आंचलिक उपन्यासों में आप मेरे उपन्यास 'आग-पानी आकाश' को भी रख सकते हैं.

● प्रेमचंद, शरतचंद्र, विमल मित्र जैसे लेखकों के उपन्यासों के कई-कई संस्करण प्रकाशित होते रहे हैं. समकालीन उपन्यासकारों की कृतियों का दूसरा संस्करण बहुत कम प्रकाशित हो रहा है, इसके क्या कारण हैं ? क्या आज का लेखन पहली की अपेक्षा कमज़ोर है या अच्छी चीज़ें प्रकाशकों तक पहुंच नहीं पा रही हैं ?

प्रेमचंद, शरतचंद्र, विमल मित्र आदि लोकप्रिय लेखक हैं. इनकी पहुंच सामान्य पाठकों तक है, इसलिए इनके उपन्यासों के कई संस्करण छपते हैं. हिंदी में खासतौर से समकालीन कथा-साहित्य में पाठकों की रुचि का ध्यान कथाकारों को नहीं रहता है. पाठक अपने को जब उपन्यास में देखेगा या अपने समाज को समाज की भाषा में देखेगा, तभी वह कोई उपन्यास पढ़ेगा. हिंदी

में पाठकीय रुचि की अवहेलना की गयी है. फिर भी, जिस उपन्यास में रोचकता है या शिल्प की नवीनता है, उस उपन्यास के तीन-चार संस्करण तीन-चार वर्षों में हुए हैं, जैसे- 'मुझे चांद चाहिए' उपन्यास.

● समकालीन, रचनाकार होने के नाते आपकी क्या चिंताएं हैं?

मेरी मुख्य चिंता लेखन में यह होती है कि जो समाज में भीतर से घटित हो रहा है, उसको कैसे अभिव्यक्त किया जाये. समाज में, व्यवस्था में और पूरी सामाजिक संरचना में पिछले कई वर्षों से काफी परिवर्तन आया है. मैं उसी परिवर्तन को पकड़ने की कोशिश करता हूं, अपनी कहानियों और उपन्यासों में.

● प्रकाशन के क्षेत्र में अन्य प्रांतों की अपेक्षा दिल्ली वासी रचनाकार अधिक सफल दिख रहे हैं, आप इसे किस रूप में लेते हैं ?

दिल्ली अब देश की राजधानी ही नहीं हिंदी साहित्य की राजधानी भी हो गयी है. शरू में बनारस हिंदी साहित्य की गतिविधियों के केंद्र में था. बाद में इलाहाबाद हिंदी-साहित्य की राजधानी बना. लखनऊ, कलकत्ता वगैरह साहित्य के गढ़ कभी नहीं रहे, हालांकि बड़े-बड़े साहित्यकार इन शहरों में भी रहे. दिल्ली में तमाम बड़े प्रकाशन-संस्थानों के होने के कारण वहां रहने वाले मीडियोकर भी अपनी किताबें एप्रोच के बल पर छपा लेते हैं. दिल्ली में रहने का यह लाभ तो उन्हें मिलता ही है, लेकिन ऐसा नहीं है कि दिल्ली के बड़े प्रकाशनों से छपने वाला साहित्य गुणात्मक दृष्टि से श्रेष्ठ भी हो. कई लेखक ऐसे हैं जो दिल्ली के बाहर रहते हैं, लेकिन वे दिल्ली के साहित्यकारों से निम्नतर नहीं हैं. विनोद कुमार शुक्ल या विद्या सागर नौटियाल तो दिल्लीवासी नहीं हैं, फिर भी वे समकालीन लेखन के शिखर पर हैं.

● क्या आप मानते हैं कि आपने जितना लिखा-पढ़ा है, उस अनुपात से समीक्षकों, आलोचकों द्वारा आपका मूल्यांकन नहीं किया जा रहा ?

मैंने ऐसा उल्लेखनीय कुछ लिखा ही नहीं है कि शिकायत करूं कि मेरी उपेक्षा हुई है. वैसे भी आलोचना की ऐसी दुर्गति है, इतने खेमे हैं आलोचकों में, इतनी राजनीति है दलवाद और मित्रवाद आदि का ऐसा दूषित माहौल है कि कुछ ज्यादा की चाह दुराशा ही होगी.

● आपकी पहली रचना कब लिखी गयी ? और वह कहां प्रकाशित हुई ?

पहली रचना (अगर इसको रचना कहा जाय तो) तब छपी जब मैं बी. ए. पार्ट-१ का विद्यार्थी था. वैसे उस प्रकाशित रचना को रचना कहना उचित नहीं है. लेकिन इस रचना के साथ एक रोचक घटना घटी, इसलिए यह पहली रचना स्मरणीय है मेरे लिए. बात ऐसी हुई कि एक बहुत मामूली पत्रिका में जो फोल्डर टाइप की अठपेजी पत्रिका थी, उसमें मेरी एक कविता छपि - वह आरोपित प्रेम या काल्पनिक प्रेम की कविता थी. उस कविता में दो बार 'ज्योत्सना' शब्द का प्रयोग हुआ था. ज्योत्सना नाम की एक बंगाली लड़की रहती थी, मेरे टोले में. तब मैं फारबिसगंज कॉलेज में इंटर के द्वितीय वर्ष में था. मेरे चाचा जो मेरे कठोर अभिभावक थे और जिनके भय से मेरी रूह कांपती थी, उनका संदेश लेकर मेरे गांव के एक ग्रामीण राजनीतिक व्यक्ति पहुंचे और चाचा के माध्यम से हिदायत दी की कविता-अविता बंद होनी चाहिए. मैं महीनों डरता रहा घर जाने से कि पता नहीं क्या कहर टूटेगा. खैर बात आयी-गयी हो गयी, लेकिन कविता लिखना स्थगित रहा. कविता लिखने की शुरुआत आगे चलकर तब हुई जब मैं एम. ए. कर चुका.

● आप क्या एक बैठक में पूरा उपन्यास या कहानी लिख लेते हैं ?

एक बैठक में उपन्यास कैसे संभव है? कहानी भी कई-कई बैठकों में लिखता हूं. कई-कई ड्राफ्ट तैयार करता हूं. औसतन हर कहानी तीन-चार बार लिखी जाती है. कभी-कभी तो सात-आठ ड्राफ्ट के बाद कहानी तैयार होती है. तो कहिए कि मैं मेहनत बहुत करता हूं कहानियों पर. अब इतनी मेहनत के बाद जब कोई कहानी लिखी जाती है आप ही बताइए कि किसी लघु पत्रिका में जिसकी प्रसार-संख्या कुछ सौ में है, मैं कैसे दूं छपने के लिए. इसलिए लघुपत्रिका के संपादक मुझसे नाराज़ रहते हैं.

● आपको गांव का कथाकार कहा जाता है ? क्या आप शहरी परिवेश से अछूते हैं ?

गांव पर लिखता हूं, इसलिए गांव का कथाकार कहा जाता हूं. वैसे मैं पिछले पैंतीस साल से कस्बों और शहरों में ही रह रहा हूं, फिर भी न कस्बा मेरी पकड़ में आया, न शहर. गांव को प्रमाणिक ढंग से मैं जानता हूं, खासतौर से कोशी अंचल को. इसलिए बहुत गहराई में जाकर उसे पकड़ने की कोशिश करता हूं.

● आंचलिक उपन्यास अथवा कथाकृति ही कालजयी हो रही है, पुरस्कार के लिए चुनी जा रही है, समीक्षकों-आलोचकों की नज़र में खरी रही है ? क्या यही वह कारण तो नहीं जिसने आपको गांव का कथाकार बना दिया है ?

नहीं ऐसा नहीं है. वैसे भी अब आंचलिक उपन्यास कौन लिख रहा है? और चर्चा में आंचलिक उपन्यासों का दौर अब समाप्त हो चुका है. मैत्रेयी पुष्पा इसकी अपवाद हैं. और मैं भी आंचलिक लेखन नहीं करता. मेरे उपन्यास या कहानियां आंचलिक नहीं हैं. हां, परिवेश ग्रामीण है, बस.

● क्या आपने प्रेम कहानियां भी लिखी हैं ?

हां, दो या तीन प्रेम कहानियां लिखी हैं. लेकिन वे प्रेम कहानियां हैं भी या नहीं, यह कह नहीं सकता.

● प्रेम कहानियां, प्रेम कविताएं और यौन मनोविज्ञान से संदर्भित रचनाओं के प्रति पाठकों का रुझान क्यों अधिक है ?

प्रेम कहानियां, या प्रेम कविताओं या यौनाकर्षण की कहानियों से मनुष्य का जैविक संबंध है. मनुष्य की अधिक जिज्ञासा है 'प्रेम'. तो ऐसी कहानियों के प्रति पाठकों का लगाव स्वाभाविक है.

● आपकी रचनाएं सेक्स सौंदर्य से वंचित क्यों हैं ?

'सेक्स' या यौन संबंधों की कहानियां मैंने नहीं लिखीं. मेरी कहानियों में इसकी छाप आयी हो तो आयी हो, लेकिन ऐसी कोशिश मैंने नहीं की. मैं सोचता हूं, दूसरे अनेक आयाम हैं जीवन के आषंगों को व्यक्त करने के लिए.

● क्या आपने कविता भी लिखी है ? कहानी अथवा उपन्यास लेखन के प्रति रुझान कैसे जगा ?

मैं शुरू-शुरू में कविताएं ही लिखता था. बात यों हुई कि मेरे नाम को पढ़ते समय लोग रामधारी सिंह दिवाकर न पढ़कर रामधारी सिंह दिनकर पढ़ लेते थे. मैंने देखा कि इसमें खतरा है और कविता लिखकर मैं कभी अपनी पहचान नहीं बना सकता. मेरे नाम को दिनकर निगल जायेगा. तो मैंने कहानी विधा का चुनाव किया. ऐसा इसलिए किया, क्योंकि दिनकर जी कहानी नहीं लिखते थे. तो दरअसल मैं कवि होकर भी कहानीकार बना तो इसके पीछे यही रहस्य था.

● आप अपनी लेखनी से कहां तक संतुष्ट हैं ?

अपने लिखे से संतुष्ट कौन हो सकता है? मैंने तो अभी ऐसा कुछ लिखा भी नहीं कि गर्व कर सकूं कि मेरी अमुक कहानी या उपन्यास दीर्घजीवी होगा. कोशिश में रहता हूं कि कुछ बेहतर, कुछ और नया लिख सकूंगा.

● क्या आपको राष्ट्रीय स्तर के सम्मान / पुरस्कार भी प्राप्त हुए हैं ?

नहीं छोटे-मोटे दो-तीन पुरस्कार मिले. एक सम्मान कोटा राजस्थान से मिला था. एक सम्मान इसी संस्था से जहां मुझे निदेशक बनाया गया.

● अन्य प्रांतों में जितने शिखर सम्मान अथवा राजकीय पुरस्कार हैं उससे बिहार के रचनाकार वंचित रह जाते हैं. बिहार के राजकीय सम्मान में भी बिहार के रचनाकारों को प्राथमिकता नहीं दी जाती जबकि अन्य प्रांतों की अपेक्षा बिहार में अधिक सार्थक लिखा जा रहा है, ऐसा भेदभाव क्यों ?

यह भेद-भाव तो है. बिहार के साहित्यकारों को बाहर वह सम्मान नहीं मिलता. पुरस्कार भी बहुत कम साहित्यकारों को दिया गया है. नागार्जुन और जानकी वल्लभ शास्त्री के विषय में कहा जा सकता है कि इनको राष्ट्रीय स्तर के पुरस्कार मिले. लेकिन शास्त्री जी को भी बिहार के बाहर गीतकारों की श्रेणी में या तो गिना ही नहीं जाता या गिना जाता भी है तो 'इत्यादि' में. बिहार ने हमेशा पूरे हिंदी संसार को अपना समझा है. आप देखें बिहार में सरकारी स्तर के दो शिखर सम्मान हैं - एक राजेंद्र शिखर सम्मान जो पिछले साल विष्णु प्रभाकर को दिया गया और राष्ट्रभाषा परिषद का 'आचार्य शिवपूजन सहाय शिखर सम्मान' जो राजेंद्र यादव को दिया गया. हम बिहार वालों में संकीर्णता कम है - क्षेत्रीयता नहीं है हममें.

● पुरस्कार और सम्मान का आधार क्या है ?

पुरस्कार या सम्मान का आधार तो रचनाकार का कृतित्व है. वैसे यह बात सब जानते हैं कि पुरस्कारों में जोड़-तोड़ की राजनीति चलती रहती है. पिछले साल पटने के अरुण कमल को साहित्य आकादमी का पुरस्कार मिला तो आपने देखा उसके खिलाफ कितना हंगामा हुआ. दरअसल, बिहार के बाहर साहित्यिक मठों के जो महंत हैं उनके गले यह बात नहीं उतरती कि बिहार में भी बड़े रचनाकार हो सकते हैं. बाहर के जो भी साहित्यकार यहां आते हैं वे अपने भाषणों में वक्तव्यों में यह तो कहते हैं कि सबसे अधिक पाठक बिहार में हैं. लेकिन वे यह नहीं कहते कि बिहार में श्रेष्ठ लेखक भी हैं. अभी कुछ दिन पहले अशोक बाजपेयी और निर्मल वर्मा पटना आये और यही बातें उन्होंने भी कहीं.

● दलित साहित्य, जनवादी साहित्य, प्रगतिशील साहित्य के प्रति आपके क्या विचार हैं ?

दलित साहित्य, जनवादी साहित्य और प्रगतिशील साहित्य को उसकी समग्रता में स्वीकार करने का नकारात्मक पक्ष है. जनवादी और प्रगतिशील साहित्य के अंतर को मैं नहीं समझ पाता. दलित साहित्य को जिस रूप में आज के दलित साहित्यकार परिभाषित कर रहे हैं, वह भी साहित्य के लिए घातक है. सिर्फ दलित द्वारा लिखा गया, दलितों के उत्पीड़न का साहित्य ही दलित साहित्य है - यह एकांगी और घातक धारणा इधर खूब प्रचारित हुई है. यहां तक कि मैंने जो दलित के सुविधाभोगी वर्ग पर 'आग-पानी आकाश' नामक उपन्यास लिखा तो दलित लेखक मुझ पर बहुत नाराज़ हैं. मैंने अपने उपन्यास में यह दिखाने की कोशिश की है कि दलितों में भी एक सवर्ण वर्ग बन गया है जो अपने वर्ग को उसी नज़रिये से देखता है, जिस नज़रिये से दलितों को सवर्ण देखते हैं. मेरे सामने राजनीति, शासन और प्रशासन के कई चेहरे थे जिनको लेकर मैंने यह उपन्यास लिखा.

प्रगतिशील साहित्य सदा से वरेण्य रहा है और रहेगा. चीज़ों को, स्थितियों को प्रगतिशील दृष्टि से देखकर ही नया रचा जा सकता है.

● साहित्य समाज का दर्पण है, तो समाज की नंगी व्यवस्था, भ्रष्ट प्रशासन, कुंठित मानसिकता को पारदर्शी रूप में क्यों नहीं साहित्य में उतारा जा रहा है ?

'साहित्य समाज का दर्पण है' - यह बात बहुत पुरानी

हो चली है. साहित्य उससे आगे की सच्चाई है और इस सच्चाई को हिंदी के कथाकार बड़ी शिद्दत से अपनी कहानियों में अभिव्यक्त कर रहे हैं.

● कहानी, उपन्यास पढ़ने की अपेक्षा पाठकों का रुझान लघुकथा, कविता, गीत, ग़ज़ल तक सिमट कर रह गया है ? क्या आप इसे स्वीकारते हैं ?

कहानियां और उपन्यास आज भी पढ़े जाते हैं. इसका प्रमाण है प्रति वर्ष प्रकाशित होने वाले कहानी-संग्रह और उपन्यास. हां, इतना सही है कि पाठकों की संख्या कम हुई है. गीत, ग़ज़ल या लघुकथाएं लोग इसलिए पढ़ते हैं, क्योंकि इनको पढ़ने में समय कम लगता है.

● बिहार के साहित्यिक माहौल से आप कहां तक संतुष्ट हैं ?

बिहार का साहित्यिक माहौल कई हिंदी प्रदेशों से बेहतर है. यहां किसी भी प्रदेश से अधिक पाठक हैं. किताबें, पत्र-पत्रिकाएं सबसे अधिक बिहार में बिकती हैं और पढ़ी जाती हैं. आप कोई भी हिंदी पत्रिका देखिए सबसे अधिक पत्र लेखक बिहार के मिलेंगे. कस्बों यहां तक कि कुछ गांवों से भी साहित्यिक पत्रिकाएं छपती हैं. रानीगंज छोटी-सी ज़गह है, बाज़ार है, वह कस्बा भी नहीं. वहां से 'सरोकार' नामक पत्रिका छपती है. ऐसी अनेक पत्र-पत्रिकाएं छोटी-छोटी ज़गहों से छपती हैं. अक्सर गोष्ठियां भी होती रहती हैं तो, बिहार का साहित्यिक माहौल अच्छा है - इतना तो कहा ही जा सकता है.

● आप बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद के निदेशक हैं. आपके कार्यकाल में कौन-सा महत्वपूर्ण काम हुआ है या हो रहा है ?

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद एक सरकारी संस्था है. यहां के सारे कर्मचारी सरकारी नौकर हैं. एक निदेशक यानी मैं ही गैर सरकारी हूं. सरकारी दफ़्तरों का जो हाल है, वह आप जानते हैं. फिर भी अपने तई जितना हो सकता है, मैंने करने की चेष्टा की है. परिषद की गरिमा के अनुकूल परिषद से 'भाषा-सर्वेक्षण के सिद्धांत' पर एक महत्वपूर्ण ग्रंथ का प्रकाशन हुआ है. इस विषय पर अभी तक हिंदी में एक भी पुस्तक नहीं थी. इसके अतिरिक्त 'भारत-विभाजन और हिंदी उपन्यास' प्रकाशित किया गया है. अन्य ग्रंथ प्रकाशित हो रहे हैं. अनुसंधान विभाग में 'हिंदी साहित्य और बिहार खंड-५' का काम लगभग पूरा हो गया है. इस भाग में सन १९०० से सन १९२५ ई. के बीच जन्मे साहित्यकारों के जीवनवृत और कृतित्व का परिचय है. यह सामग्री प्रेस में चली गयी है.

परिषद में प्रायः लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकारों, पत्रकारों आदि के भाषण आयोजित होते रहे हैं. अभी कुछ दिनों पूर्व परिषद में 'हंस' संपादक राजेंद्र यादव, डॉ. मैनेजर पांडेय और पत्रकार राज किशोर के भाषण हुए. मार्च २००० में ही भारत विभाजन और हिंदी उपन्यास पर एक भाषण कराया गया.

परिषद को पटने के साहित्यकारों और बुद्धिजीवियों का सहयोग मिलता रहा है. कुछ साहित्यकार, अगर परिषद से कुंठित हैं या उनको परिषद की जड़ीभूत परंपरा आज टूटती दिख रही है, उनके लिए तो मैं भी अपच हूं और परिषद भी. कुछ ऐसे भी स्वनामधन्य आलोचक हैं जिनको लगता है कि जिस कुर्सी पर डॉ. श्रीकृष्ण सिंह बैठते थे उस पर गंवार लोग क्यों बैठ रहे हैं - वे यह भी कहते हैं कि जिस पद पर शिवपूजन सहाय थे उस पर यह दिवाकर क्यों हैं? परिषद पत्रिका भी अब नियमित होने जा रही है, अप्रैल से. पत्रिका के अनूपलाल मंडल, निराला, नागार्जुन आदि विशेषांकों को विद्वानों ने पसंद किया. गोपाल सिंह 'नेपाली' पर भी एक अंक छपा.

● युवा लेखकों की अच्छी कृतियों को कोई प्रकाशक छापना नहीं चाहता. यहां तक कि चर्चित लेखकों में भी कई ऐसे रचनाकार हैं, जो स्वयं के खर्चे पर अपनी पुस्तक स्वयं छपवाते हैं. ऐसे में कोई प्रकाशक पुस्तक खर्च का, आधा खर्च लेकर कोई पुस्तक प्रकाशित करता है, तो इसमें प्रकाशक कितना दोषी है ? लेखक क्या करे ?

लेखकों की संख्या इधर बहुत बढ़ी है. उसी के अनुपात में प्रकाशक भी बढ़े हैं. दिल्ली में भरे पड़े हैं प्रकाशक. छोटे प्रकाशक साहित्यकारों से छपाई-खर्च लेकर किताबें छापते हैं और छपी किताबें लेखकों को लागत मूल्य के एवज में देते हैं तो इसमें लेखक का ज्यादा अहित नहीं है. वैसे फायदा तो प्रकाशक को होता ही है. यह आप मानकर चलिए कि प्रकाशन व्यापार है, किसी 'मिशन' का भाव अब इसमें नहीं रह गया है.

● क्या आप पूरे विश्वास के साथ कह सकते हैं कि राजकमल प्रकाशन, ज्ञानपीठ प्रकाशन, किताब घर, वाणी प्रकाशन, प्रभात प्रकाशन आदि से जो भी पुस्तकें प्रकाशित होती रही हैं, सब की सब स्तरीय हैं ? फिर आलोचक उनमें से कई पुस्तकों की धज्जियां कैसे उड़ाते हैं ?

ऐसी बात नहीं है कि जिन प्रकाशकों का आपने नाम लिया, वे सिर्फ स्तरीय साहित्य ही छापते हैं. स्तरहीन साहित्य भी वे छापते हैं, क्योंकि छापना असल में व्यापार करना है और प्रकाशक व्यापारी हैं. उनको जिस लेखक से फायदा होगा, उसको वे छापेंगे. कितने अफ़सरों की स्तरहीन किताबें बड़े प्रकाशकों से कैसे छप जाती हैं? तो भाई, प्रकाशक के लिए वही लेखक बड़ा है जो उसकी किताबें बिकवा दे. सरकारी खरीद में अफ़सर लोग होते हैं. संयोग से यदि वे लेखक / कवि हुए तो आसानी से छप जाती हैं, उनकी किताबें, बिक भी जाती हैं बल्क परचेज में. भले पाठकों के लिए उस लेखक का कोई महत्व न हो.

● हर साहित्यकार अपनी कृति को श्रेष्ठ बतलाता है ? ऐसे में अच्छी कृति का मांपदड क्या है ?

इसका ज़वाब मैं पहले दे चुका हूं.

● डॉ. भगवती शरण मिश्र जैसे उपन्यासकार की कृति अधिकांश समीक्षकों द्वारा सराहे जाने के बावजूद पाठकों द्वारा पसंद नहीं की जाती न पढ़ी जाती है. जबकि कई साधारण प्रकाशकों की पुस्तकें सीधे पाठकों से जुड़ी होती हैं. आखिर पुस्तकों की पठनीयता का मापदंड क्या है ?

मापदंड तय करना कठिन है. कुछ पुस्तकें आलोचकों द्वारा प्रशंसित होती हैं तो पाठकों द्वारा नकार दी जाती हैं. कुछ पुस्तकें पाठकों द्वारा प्रशंसित होती हैं तो आलोचक उन पर ध्यान नहीं देते. तो मापदंड तय करना कठिन है. इस पर अलग से बात की जानी चाहिए. जो प्रख्यात कवि-लेखक हैं उनकी कृतियां पाठक-आलोचक दोनों सराहते हैं. जो नये कवि या लेखक हैं, उनमें अगर प्रतिभा है तो पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से वे पहले प्रकाश में आते हैं, बाद में प्रकाशक भी उनको छापते हैं. ऐसे कई उदाहरण हैं.

● अज्ञेय ने सहकारी प्रकाशन के माध्यम से 'तार सप्तक' का प्रकाशन किया था जो कालजयी कृति साबित हुई. सहकारी प्रकाशन के प्रति आपके क्या विचार हैं ?

अन्य भाषाओं में सहकारी प्रकाशन काफी सफल हुए हैं. मराठी, बंगला, आदि भाषाओं के लेखक सहकारी प्रकाशनों के माध्यम से अपनी कृतियां प्रकाशित करते हैं. हिंदी में भी ऐसा होना चाहिए. मुख्य प्रश्न पुस्तकें छापने का नहीं है. प्रश्न है कि पाठक पुस्तकें खरीदे कैसे? हिंदी में पुस्तक संस्कृति का घोर अभाव है. लेखक पाठकों से सीधे संपर्क करें, अपनी किताबें पाठकों को पढ़ने के लिए दें, उनकी राय लें. शहरों, कस्बों और गांवों में लेखक-प्रकाशक पुस्तक प्रदर्शनियां आयोजित करें, सरकार पुस्तकालयों को पुनर्जीवित करे, तभी कुछ हो सकेगा.

● समकालीन लेखकों को आप क्या दिशा-निर्देश देना चाहेंगे?

समकालीन लेखकों को मैं कोई उपदेश नहीं देना चाहता. सिर्फ इतना कहना चाहता हूं कि साहित्य में आते हैं तो कम से कम अपनी भाषा पर ध्यान दें. अनेक नये लेखक शुद्ध भाषा नहीं लिख पाते. एक दूसरी बात यह है कि अनेक लेखक सिर्फ लिखते हैं, पढ़ते बहुत कम हैं. पढ़ने के नाम पर कुछ पत्र-पत्रिकाएं बस. नये लेखकों को अपनी विरासत से परिचित होना चाहिए. पहले के लेखकों-कवियों के प्रति हिकारत का भाव नहीं, सम्मान का भाव होना चाहिए. साथ ही हिंदी के बाहर क्या लिखा जा रहा है - इसकी भी जानकारी उन्हें होनी चाहिए. यह बस मैं इसलिए कह रहा हूं, क्योंकि मेरे संपर्क में कई ऐसे नये लेखक हैं.

डॉ. रामधारी सिंह 'दिवाकर'
बिहार राष्ट्रभाषा परिषद,
सैदपुर, पटना-८०० ००३

सिद्धेश्वर
पोस्ट बॉक्स नं.-२०५,
करबिगहिया, पटना-८०० ००१

यात्रा

✍ सुरेंद्र रघुवंशी

एक दिन यात्रा में चलते हुए
जहां पहुंचूंगा मैं
वहां पूर्ण लक्ष्य की प्राप्ति का
नहीं होगा कोई विजय-स्तंभ,
लक्ष्य की दिशा में
कुछ बढ़ने से ज्यादा कुछ नहीं होगा
शेष रहेगा बहुत चलना.

गढ्ढे भरना ही नहीं होगा पर्याप्त काम
ज़रूरी होगा
उस पर हरी-भरी घास उगाना भी,
घास की भी सिंचाई न करने पर
उसके सूख जाने के भय से
नहीं बचा जा सकेगा किसी तरह,
बावजूद इसके
ज़मीन में नुकीले सींगों से माटी उछालते.
हुंकार भरते सांड़
चले आयेंगे कहीं से.

स्वयं को यूं ही सुरक्षित मान लेने का
दौर नहीं है यह समय,
यहां विभाजक रेखा के समक्ष
तय करनी होगी अपनी भूमिका
निश्चित करने होंगे अपने पक्ष.
स्थितियों को ढका नहीं जा सकेगा अब.

ख़तरनाक होंगे
उपलब्धियों के भ्रम
और थकान के बहाने.

महात्मा बाड़े के पीछे,
अशोक नगर, गुना-४७३ ३३१ (म. प्र.)

पुस्तक समीक्षा

दंगों के विरोध की कहानियां

✍ डॉ. नगमा मलिक

''नहीं, अब और नहीं''(कहानी-संग्रह) : सं. *संतोष श्रीवास्तव, डॉ. प्रमिला वर्मा* ● परिदृश्य प्रकाशन, ६ दादी संतुक लेन, धोबी तलाब, मैरिन लाइंस, मुंबई ४०० ००२ मू. २५० रु.

'नहीं, अब और नहीं' श्रीमती संतोष श्रीवास्तव एवं डॉ. प्रमिला वर्मा द्वारा संपादित यह कहानी संग्रह उन काले दिनों, स्याह सुलगती शामों और विकराल अंधेरी रातों का चश्मदीद गवाह है - जहां इन्सानियत सिसकती है, मानवता खून के आंसू बहाती है, भाईचारा लहूलुहान है और स्नेह शर्मसार. जहां सांप्रदायिकता की आग में झुलसता मासूम बचपन है, नफ़रत की आंधियों में तार-तार होती अस्मिता का दुखद इतिहास है, जुनून के धुएं में घिरे मासूम, निरीह लोगों का चीत्कार है. एक-एक तिनका जोड़ कर बनाये गये घरों को लुटते, बिखरते, उजड़ते, जलते व भस्म होते देखने की साक्षी आंखों का मूक क्रंदन है, अपने प्यारों के जिस्मों को लहू में लिथड़ा देखने का शब्दातीत हहाकार है- लेकिन आग के इस दरिया के पार स्नेह से सराबोर हृदयों की धड़कनें भी हैं, प्रेम से लबरेज़ छलछलाती आंखें भी हैं, मानवता की चमकीली मुस्कान भी है, अपनत्व की फैली हुई बांहें जो इस बात की शहादत देती हैं कि गंदे ज़हनों, सांप्रदायिक तत्वों की तमामतर कोशिशों के बावजूद भी इन्सानियत का दीप जगमगाता रहता है. अंधेरी रातों के बाद, उजली चमकीली सुबह ज़रूर आयेगी.

'नहीं, अब और नहीं' पुस्तक का शीर्षक इस बात का साक्षी है कि नेक, संवेदनशील, मानवतावादी इन्सान दहशत भरा माहौल, बेगुनाहों की चीखो-पुकार, वहशी क्रूरता का नग्न नृत्य, मौत का गर्म बाज़ार देख कर पूरी ताकत से चीख उठा है. संतोष जी ने 'हमें जवाब चाहिए' में दंगों की तबाहकारी और दंगों के कारणों पर बड़ी साफ़गोई, सच्चाई और बेबाकी से प्रकाश डाला है. वह दंगाइयों से प्रश्न पूछती हैं कि मंदिर-मस्जिद ढा कर अपने ही ईश्वर को बेघर करना - यह धर्म के नाम पर कलंक? बुतपरस्त क्या दूसरों का घर उजाड़ते हैं? या जो बुतपरस्त नहीं हैं वे ईश्वर के बनाये जीते-जागते बुतों को मुर्दों में तब्दील कर देते हैं ?'

सांप्रदायिकता की पृष्ठभूमि पर रची गयी सोलह कहानियों में से प्रथम कहानी बंबई के ख्यातिप्राप्त कहानीकार मधुप शर्मा जी की है. इसमें उन्होंने इस हक़ीक़त को बेनक़ाब किया है कि समाज के कुछ दुश्मन तत्व ही फसाद की आग भड़काते और अपने हाथ सेंकते हैं वरना आम लोगों के दिलों में एक-दूसरे के प्रति कोई वैर भाव नहीं होता. अब्दुल के शब्द - 'अब्बा यह हिंदू मुसलमान के दिलों का फ़र्क नहीं है जो दंगे फसाद करवाता है और न ही यह किसी एक फिर्के का काम है. दंगे फसाद करवाने वाला फिर्का अलग होता है, मतलबपरस्त फिर्का जो न हिंदू होता है न मुसलमान..."

'शहर की सब से दर्दनाक खबर' कहानी में संवेदनशील लेखिका सूर्यबाला जी ने मानव-मन की पेचीदा गुत्थियों पर प्रकाश डाला है. पढ़े-लिखे ऊंचे तबके में दिखावा और औपचारिकता तो है लेकिन वास्तविक सौहार्द, अपनत्व और आत्मीयता का अभाव है इसीलिए अविश्वास जन्म लेता है और विश्वास के कमज़ोर सूत्र ज़रा से झटके से टूट जाते हैं, बिखर जाते हैं. शिल्प और कथा विन्यास की दृष्टि से यह एक सशक्त और गहरा प्रभाव छोड़ने वाली कहानी है.

जितेंद्र भाटिया की कहानी अपनी विशिष्ट भाषा, कथ्य और शिल्प के कसाव के कारण अपनी उपस्थिति दर्ज कराने वाली एक यादगार कहानी है. दाढ़ी चाचा और बाउजी के बेलौस आत्मीय संबंध - स्थिति की क्रूरता यह कि दोनों ही सांप्रदायिक जुनून का शिकार हुए - क्यों? आखिर क्यों? जिन्हें सोज-ए-मुहब्बत के सिवा कोई बुत, कोई खुदा याद नहीं... उन बेगुनाहों को सांप्रदायिकता की आग में क्यों झुलसना पड़ता है. मानवता के चेहरे पर कालिख पोतने का जिम्मेदार कौन है? दंगों की पृष्ठभूमि पर आधारित इस कहानी में लेखक की मानवीय संवेदना की धड़कनों की स्पष्ट अनुगूंज है.

'आंधी में चिराग' में, सलाम बिन रज्जाक ने दंगों के कारणों की शिनाख्त की है. दंगे करवाना राजनीतिज्ञों का मनपसंद खेल है. अपनी साख गिरती देखकर पार्टी, जनता का ध्यान बंटाने के लिए उन्हें एक दूसरे से भिड़ा देती है और इस तंदूर में अपनी रोटियां सेंकती है. जनता के रक्षक वास्तव में इन्सानियत के भक्षक हैं.

हिंदी की प्रतिष्ठित लेखिका सुधा अरोड़ा जीवन के छोटे-छोटे प्रसंगों और घटनाओं को लेकर अत्यंत कलात्मकता एवं कुशलता से कहानियां रचकर अपनी अद्‌भुत सर्जनात्मक शक्ति का परिचय देती हैं. 'काला शुक्रवार' में महानगर बंबई की दौड़ती भागती ज़िंदगी में अचानक बम-ब्लास्टों ने जो कहर बरपा किया था उसका बेहद यथार्थ और हृदयविदारक चित्रण लेखिका ने किया है.

संवेदना के धरातल पर जीवन के कटु सत्य और यथार्थ को प्रतीकात्मक ढंग से व्यंजित करने और कहानी को एक नया ट्रीटमेंट देने वाले कहानीकार धीरेंद्र अस्थाना की 'विचित्र देश की प्रेमकथा' भारत के एक विशेष कालखंड और आतंक भरे माहौल पर लिखी गयी एक अच्छी कहानी है. राजनीतिक विद्रूपता को लेखक ने व्यंग्यात्मक शैली में प्रस्तुत कर उसे पुरअसर बना दिया है.

साजिद रशीद की कहानी 'पनह' डर, आतंक, भयावह माहौल में जीते, अपनी जान बचाने के लिए भागते, छिपते बेबस, लाचार, मजबूर मजीद औद नूरैन की कहानी न होकर उन तमाम इन्सानों की कहानी है जो सांप्रदायिकता की अग्नि की लपटों में साक्षात झुलसते हैं.

कहानीकार डॉ. अरविंद की कहानी 'हिंदुस्तान / पाकिस्तान' बंटवारे के दर्द को व्यंजित करने वाली एक सशक्त कहानी है. सांप्रदायिक जुनून ने एक देश को दो हिस्सों में बांट दिया. जो लोग पाकिस्तान गये उन्हें हमेशा वतन की यादें कचोटती रहीं-अकेलेपन की धारदार कैंची उनके वजूद को काटती रही. इस कहानी में फौजी कैदियों के माध्यम से इसी पीड़ा को वाणी दी गयी है.

कमलेश बख्शी जी की कहानी 'दंगा दंगा खेलें' सांप्रदायिकता पर लिखी गयी एक सशक्त कहानी है. उन्होंने इस त्रासदी को व्यंजित किया है कि अनजाने में बच्चों के ज़हनों में भी सांप्रदायिकता का विष दाखिल हो रहा है जिसका जिम्मेदार मौजूदा माहौल है. 'लौटेगी सबीहा?' सांप्रदायिकता की दहशत को झेलते परिवारों की मनःस्थिति को, शब्दातीत दुःख को तो व्यंजित करती है. इसमें आशा की किरणें भी हैं और इन्सानियत से लबालब भरे हृदय का उजाला भी. विभारानी की यह कहानी एक प्रभावपूर्ण कहानी है.

कहानी 'तूफान गुज़र जाने के बाद' मुल्क को टुकड़ों में बंटते देखने की पीड़ा, विस्थापन का दर्द, अपने जिगर के टुकड़ों को मौत की गोद में जाते देखने की अनुभवातीत वेदना से साक्षात्कार कराती है. दुर्गा बहन के ज़ख्म फिर से हरे हो जाते हैं जब उनका अपना ही पोता मुसलमान लड़की से शादी करना चाहता है. क्योंकि मुस्लमान दंगाइयों ने ही तो उनकी बिट्टा को उनसे छीना था. लेकिन बाबरी मस्जिद को लेकर होने वाले फसाद में दंगाई हिंदू थे और यह घटना उनकी सोच को यक्सर बदल जाती है और वह अपने पोते को निकहत से शादी करने की अनुमति दे देती हैं. दूर तक प्रभाव छोड़ने वाली इस कहानी की लेखिका संतोष श्रीवास्तव हैं.

डॉ. प्रमिला वर्मा की कहानी 'दोहराने के खिलाफ़' में इस तथ्य को उजागर किया है कि सब मिलकर सामूहिक रूप से प्रयास करें तो दंगाई किसी का कुछ नहीं बिगाड़ सकते. इस कहानी में विभाजन की विभीषिका, पुन्नू के बलिदान का बड़ा ही कारुणिक चित्र उकेरा गया है. 'खरोंच' में संजीव निगम ने हमारे ज़हनों में रची बसी सांप्रदायिकता की ज़हनियत को खुरचा है.

डॉ. माधुरी छेड़ा की 'हालात' कहानी में भय व आंतक के साये भी हैं. शक और संदेह के कांटे भी और इन सबके बीच से फूटती इन्सानियत की किरणें भी. लेखिका ने मानव मनोविज्ञान की बड़ी सूक्ष्म पहचान की है. सूरज प्रकाश की 'दंगे' कहानी दंगों को भुनाने की टुच्ची मानसिकता पर प्रहार करने के साथ ही इस कटु सत्य को व्यंजित करती है कि इन्सान की जान महत्वहीन और धर्म महत्वपूर्ण है, तंग नज़रों की नज़र में.

अलका अग्रवाल की 'नदी अभी सूखी नहीं' में मानव मन की महीन तहों को कुरेदा गया है. विभाजन की भयावहता को भी इसमें बड़ी मार्मिकता से रेखांकित किया है.

संग्रह की सभी कहानियों में अलग-अलग संदर्भों व स्थितियों में दंगों व फसादों की भीषणता, विकरालता एवं अमानवीय दृष्टिकोण को रूपायित किया गया है. इन्हें पढ़कर दंगों के प्रति वितृष्णा, नफ़रत, हिकारत तो मजबूत से मजबूत तर होती ही है साथ ही इन्सान और मानवता के प्रति आस्था भी दृढ़तर होती है. संपादिका-द्वय का यह कदम सराहनीय है कि उन्होंने एक ऐसे विषय को उठाया है जिस पर विचार किया जाना चाहिए. 'आशीर्वाद' के निदेशक डॉ. उमाकांत वाजपेयी के शब्दों में-"दंगे किसी भी समाज और देश के लिए कलंक हैं. क्या बुद्धिजीवियों का यह दायित्व नहीं है कि वे गुमराह पीढ़ी को दिशा दें, एक ऐसा वातावरण तैयार करें जो मनुष्य को मनुष्य समझे ?"

दंगें - बर्बरता, क्रूरता, नफ़रत की उपज हैं, और कोई भी सुलह पसंद दंगों को पसंद नहीं करता. सच्चाई तो यह है कि आम लोग मिल-जुल कर, एक दूसरे की खुशियां-गम बांटते हैं. हिंदू क्या इस जुनून भरे समय में मुसलमानों की सहायता नहीं करते या मुसलमान हिंदुओं की जान नहीं बचाते? जिन दिलों में इन्सानियत का सवेरा होता है वहां कभी सांप्रदायिकता का अंधेरा घुस नहीं पाता...

काश! हम देश द्रोहियों और समाज के दुश्मनों की पहचान करें. दानवों के हाथों मानवों की मिट्टी पलीद न हो. यह संकलन वक्त की पुकार है.

प्राध्यापिका, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग,
एस. एन. डी. टी. महिला विश्वविद्यालय, मुंबई ४०० ०२०

सामाजिक यथार्थ की कहानियां

अशोक आंद्रे

''इक्कीस कहानियां'' (कहानी-संग्रह) : **डॉ. रूपसिंह चंदेल**
प्रकाशक - सुनील साहित्य सदन, ३३२०-२१ जटवाड़ा,
दरियागंज, नयी दिल्ली-११० ००२. मू. २०० रु.

आठवें दशक के उत्तरार्द्ध से हिंदी कहानी के क्षेत्र में जिन रचनाकारों ने निरंतर लिखकर अपनी अलग पहचान बनायी है उनमें एक नाम रूपसिंह चंदेल है. चंदेल ने जहां ग्रामीण परिवेश को अपनी रचनात्मकता का आधार बनाया वहीं नगरीय-महानगरीय जीवन भी उनकी कहानियों में गंभीरता से चित्रित हुआ है. हाल में प्रकाशित 'इक्कीस कहानियां' संग्रह चंदेल की पूरी कहानी यात्रा का परिचय करवाता है, जिसमें पंद्रह पुरानी कहानियों के साथ छः नयी कहानियों को स्थान दिया गया है.

यह सत्य है कि आज का युग उत्तर-आधुनिकता की होड़ में काफी भ्रम पालता हुआ दिखाई देता है. लेकिन वास्तविकता यह है कि वह अपने पूर्वाग्रहों से ग्रसित समाज का भी निर्माण कर रहा है. उसका आधार राजनैतिक अपराधीकरण के साथ झिलमिलाते नारों से भी प्रभावित हुआ है. उसको लगता है कि उसके सारे मूल्य तथा सामाजिक सरोकार का आधार भी ये ही नारे हैं जिसके तहत उसके सभी कष्टों का निवारण भी हो जायेगा.

ये कैसी विडंबना है कि यूरोप के सभी वर्ग गंवई संसाधनों के तहत फार्म हाउसों के द्वारा मिट्टी की गंध से अपने आप को जोड़ते रहते हैं. जब कि उत्तर-आधुनिकता के दौर में हमारे यहां का समाज उसे नकारता हुआ दिखाई देता है क्योंकि यहां का आम आदमी गंवई धरातल पर मिट्टी की गंध से सराबोर होने की बजाय ऐय्याशी के अड्डों का विस्तार करता दिखाई देता है इसीलिए महानगरीय विद्रूपताओं का विस्तार आज हम गांव के नारकीय जीवन में स्पष्ट रूप से देख सकते हैं. इसीलिए न तो हमें महानगर ही आकर्षित करते हैं और न गांव तथा मानवीयता का ह्रास तो हो ही रहा है. लेकिन आपसी रिश्तों में स्पंदित होती धड़कनों में, विश्वासों का रीतापन घबराहट के रेतीले ढूह खड़े कर रहा है.

उपरोक्त यही सब स्थितियां लगभग सभी कहानियों में लेखक ने बड़ी शिद्दत के साथ उद्घाटित की हैं. कहानी 'भेड़िया' की नायिका परिवार की दयनीय स्थितियों के कारण शिव मंगला के द्वारा कई बार बिकती रही. हर बार उसे लगा शायद अबकी बार एक घर हमेशा के लिए उसके साथ हो जायेगा. उसका अंतिम पति भीखू जिसके साथ उसकी सातवीं बार शादी हुई थी, बड़े प्रेम से उसे रख भी रहा था. लेकिन दुर्भाग्य शायद उसके साथ ज्यादा ही जुड़ा हुआ था तभी तो पति का इंतजार करते वक़्त समाज में छिपे भेड़िये उसे छोड़ते नहीं हैं. उसके सारे भाव तथा विश्वास पल्लवित, विकसित तथा पुष्पित होने के बजाय मुरझा गये थे. सच्चाई को सुनना शायद हमारे समाज को गैर ज़रूरी लगता है. ताकत सारी व्यवस्थाओं को अपनी जेब में सहेज कर ठहाके लगाती रहती है और फिर एक दिन व्यवधान डालने वालों को रात का अंधेरा बना डामर की ज़गह सड़क पर चिपका देती है. चाहे इसके लिए पूरे पर्यावरण को माचिस की तीली लगानी पड़े. हमारा शास्त्र 'एक पेड़ लगाने वाले के सौ पुरखों को मोक्ष मिलता है' की एक उक्ति को ठेंगा दिखाता रहता है और पता नहीं कितने किसन पंडित (सड़क) आज की विकास की दौड़ में शहीद हो जाते हैं. इसी व्यवस्था को अन्य कहानियों में भी देखा जा सकता है, यथा 'क्रांतिकारी,' 'पीछा करती आंखें' तथा 'खाकी वर्दी'.

आज स्त्री विमर्श की कितनी ही बातें कही जा रही हैं लेकिन उसके विकास के नाम पर भ्रूण हत्या भी देखी जा सकती है. अगर उससे भी बच गयी तो उसे जिन संघर्षों के नाम पर युद्ध को झेलना पड़ता है, 'लड़की' कहानी में इस तरह के संघर्ष को विद्या के माध्यम से देखा जा सकता है. यहां तक कि वह बाप-दादाओं की मार को भी सहती है. आखिर उसका संघर्ष अपने अंदर ही अंदर कुछ तय करता है और कल की सुबह उसकी शुरुआत हो जाती है.

कहानी 'शिकार' में लेखक ने जिन अमानवीय स्थितियों को व्यक्त किया है तथा व्यक्ति कितना गिर सकता है उसका जीता जागता उदाहरण ऑफिस के बड़े बाबू रामधनी के रूप में देखा जा सकता है.

'पीछा करती आंखें' में असहाय व्यक्ति का दर्द हमारी आत्मा को भी झकझोर जाता है और ईमानदार व्यक्ति ऐसी स्थितियों में फंसा, कराहने के सिवा और कर ही क्या सकता है.

लेखक की इन कहानियों में गांव में फैलती गंदी राजनीति का चित्रण जिस तरह हुआ है वह अद्‌भुत है. लेकिन वह ऐसी स्थितियों से भी रूबरू होता है जहां मानवीय सरोकार अभी मरे नहीं हैं. पूरे समाज को उन चरित्रों से भी जोड़ती है जो स्वयं की बजाय पूरे समाज के लिए जीते हैं. यही स्थिति कहानी 'हासिम का' में भी देखी जा सकती है. जब कि 'सुनो पुनिया' एक अच्छी प्रेम कहानी है. सब कुछ शायद खत्म हो जाये लेकिन प्रेम कभी न ख़त्म होने वाला सिलसिला है, वह हंसाता भी है रुलाता भी है. लेकिन आपसी रिश्तों को ताकत भी देता है. इससे पहले लेखक ने चंद प्रेम कहानियां ही लिखी हैं किंतु यह उनकी निःसंदेह श्रेष्ठ प्रेम कहानी है. इस कहानी का अंत बहुत ही सहज ढंग से हुआ है. पुनिया का धड़ाम से दरवाज़ा बंद करना और पारस का चुपचाप खड़ा रहना. बहुत कुछ कह जाता है जबकि खामोशी उसे घेर लेती है और पुनिया फफक कर रोती है जिसकी शादी राम भरोसे से पहले ही तय कर दी गयी थी.

अंतिम कहानी 'अजीर्ण' समाज के उस वर्ग पर चोट करती है जिस पर आम आदमी की नज़र होती है. क्योंकि लेखक ही तो समाज के प्रतिकूल हो आयी स्थितियों पर लगातार चोट करता रहता है. साहित्यिक माफियों के कारण साहित्य की जो दुर्दशा हुई है वह वास्तव में शोचनीय होने के साथ-साथ, हमें सोचने के लिए भी मजबूर करती है.

संग्रह की सभी कहानियों को पढ़ने के उपरांत यह कहा जा सकता है कि लेखक ने सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक स्थितियों पर जिस गंभीरता से प्रहार किया है वह महत्वपूर्ण है.

हमारे गांव जिस तरह से आधुनिक शहरीकरण के द्वारा संभावित दुर्घटनाओं से आहत होते जा रहे हैं उनकी ओर लेखक ने अनेक कहानियों में स्पष्ट संकेत किये हैं.

लेखक के पास अनुभव की व्यापकता है, भाषा है और कहने की किस्सागोई शैली है. जीवन के छोटे-बड़े प्रसंगों को जिस सूक्ष्मता से लेखक ने कहानियों में चित्रित किया है वह महत्वपूर्ण है और उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठित चंदेल की कहानियों के प्रति आस्था स्पष्ट करता है. संग्रह की अन्य उल्लेखनीय और अविस्मरणीय कहानियों 'बच्चे,' 'निर्णय', 'आदमखोर', 'आदेश', 'चेहरे', 'पापी' तथा 'झिंगुरी' के आधार पर यह कहना उचित होगा कि प्रस्तुत संग्रह की सार्थकता असंदिग्ध है.

१८८ / जी. एच. ४, निकट मीरा बाग,
पश्चिम विहार, नयी दिल्ली - ११० ०६३.

व्यंग्य का अख़बारी रोज़नामचा

निर्मला डोसी

''धृतराष्ट्र टाइम्स'' (व्यंग्य-संग्रह) : **डॉ. सूर्यबाला**
प्रकाशक - विघ्न विहार, १६८५ कूचा दखनीराय,
दरियागंज, नयी दिल्ली-११० ००२. मू. १५० रु.

सटीक शीर्षक किसी भी रचना को आकर्षक बनाकर पाठकों का ध्यान ही नहीं खींचता बल्कि कुछ शब्दों में ही रचना का समूचा जुगराफिया बयां कर देता है. 'धृतराष्ट्र टाइम्स' ऐसा ही शीर्षक है, जिसे पढ़ने-सुनने और देखने मात्र से पुस्तक का परिचय मिल जाता है. यहां देखना इसलिए लिखा है कि पुस्तक का कवर भी शीर्षक को पूर्णतः देने जैसा ही है. लेखिका की व्यंग्यात्मक एप्रोच को ज़ाहिर करता है. वर्तमान सामाजिक विसंगतियों, बदलती मानसिकता के अंतर्विरोधों तथा टुच्ची राजनीति को निशाना बनाते हुए आम जीवन में रोज़ घटने वाली घटनाओं का सांगोपांग वर्णन कर रचनाकारा ने रचनात्मक प्रवीणता का परिचय तो दिया ही है, शिल्प की दृष्टि से भी शालीन होने के साथ भरपूर पठनीय व सामान्य पाठक को संप्रेषित कर पाने में पुस्तक सक्षम है.

पुस्तक के अड़तीस व्यंग्य लेखों में रचनाकार ने एक कुशल चिकित्सक की सी दक्षता से देश, समाज व समय के स्पंदन को परखा है, और उसकी नाड़ी पर हाथ धर आधि-व्याधि को पड़तालने की सफल कोशिश की है. यक़ीनन इसके लिए सतत जागरूकता, संवेदनशीलता तथा आनुभाविक ऊर्जा का होना ज़रूरी है. तभी नग्न सत्य की परतें अनावृत की जा सकती हैं.

पुस्तक को पढ़ने, गुनने और कुनैन सी कड़वी खुराक गले उतारने के लिए तीन-चार या ज्यादा मध्यांतर लेने पड़ते हैं. व्यंग्य रचनाओं के साथ अनिवार्यतः ऐसा ही होता है.

सरल तथा प्रचलित हिंदी भाषा के साथ कहीं-कहीं आंचलिक शब्दों का प्रयोग कथन को रवानगी देता है.

रेल यात्रा सभी करते हैं, और उन सभी स्थितियों से दो-चार होते हैं, भुगतते हैं फिर भूल जाते हैं. एक रचनाकार उन बिंबों के माध्यम से जो देखता है उसका अनूठा दृश्य 'भारतीय रेल...' में पढ़ा जा सकता है. 'बोल री कठपुतली' में एक कुख्यात राज्य की राजनीतिक उठा-पटक का रोचक मगर तिलमिला देने जैसा दृश्य है. निसंदेह व्यंग्य रचनाओं की सामयिकता व लोकरंजकता उन्हें पठनीय तो बनाती ही है साथ ही कई सत्य भी शिद्दत से उद्घाटित करती है. हिंदी की दुर्दशा पर 'संदर्भ बारतेंडु, हिंडी और बाजी का' विचारोत्तेजक रचना बन पड़ी है.

लेखिका की तीक्ष्ण दृष्टि और प्रखर लेखनी ने जीवन के प्रत्येक ओने-कोने खंगाले हैं. 'दल निर्माण की पूर्व संध्या पर' तथा 'एक खुराफ़ाती सपना' गलीज़ होती जा रही राजनीति तथा मज़ाक बनती लोकतांत्रिक प्रणाली का ऐसा चित्र खींचते हैं, जो कोई 'स्कूप' नहीं है, कि चौंका कर छोड़ दें. ये विसंगत स्थितियों के एक्सपोज़र हैं जो करीब की अनचीन्ही चीज़ को आंखों में उंगली डाल कर दिखाने का काम करते हैं.

लेखिका की महीन नज़र लोकगीत की एक पंक्ति में छुपे अर्थ का जो विश्लेषण करती है वह अद्भुत है. आम भारतीय पुरुष के निकम्मेपन को भारतीय नारी कितने सयानेपन से संभालती है. 'सरौता गीत : एक विश्लेषण' में भारतीय बाज़ारों पर कसते विदेशी शिकंजे का जो दृश्य प्रस्तुत किया है उसे पढ़ कर चींटी काटने जैसी चुनचुनाहट का अहसास होता है... लाल लाल ददोरे...पड़ते हुए लगते हैं.

'हिंदी साहित्य और पति' बिल्कुल अलग तर्ज व रचनाकारा के विस्तृत फलक का एक अंदाज है. पुरस्कारों के लेन-देन की राजनीति पर संग्रह में दो-तीन लेख अलग-अलग संदर्भों में लिखे गये हैं. 'महिला दिवस और फ्रेंच टोस्ट' एक ओर हास्य की चासनी से सना व्यंग्य का कैप्सूल है जिसे पढ़ते वक़्त होंठ मुस्कुरा सकते हैं किंतु अंतस्थल में कांटों की तीखी चुभन भी मिलती है.

इस संग्रह के कुछ लेख यथा 'वोट विधेयक और मेरे मुहल्ले की माताएं,' 'एक व्यंग्य वक्तव्य' में कुछ और गहराई में उतरा जा सकता था. हिंदी तथा पुरस्कार विषय पर दोहराव होने के बावजूद सभी लेख सकारात्मक और वर्तमान व्यवस्था के अंतर्विरोधों को निर्लिप्त भाव से व्यक्त करते हैं. यक़ीनन रचनाकारा के पास व्यंग्य शिल्प की तरह भी है और संवेदन की तरह भी, अनुभव की मार्मिकता के साथ भी है और सत्य की निडरता के समान भी और ये ही वे तत्व हैं जो साहित्य का धर्म ईमान होते हैं.

इस दृष्टि से 'धृतराष्ट्र टाइम्स' रचनाकारा के व्यापक दृष्टि फलक का एक रोचक दस्तावेज़ है.

डी-७ शिवप्रभा, सेक्टर-१,
चारकोप, कांदिवली (प.), मुंबई ४०० ०६७

समय बंद दरवाज़ा

✍ *जितेन साई*

जब भी लौटता दफ़्तर से
बेटी के नन्हें-नन्हें हाथ में थमा देता
गुड्डे / गुड़िया / लाल गुब्बारे
उसके लिए घर, रंगीन किताब हैं
बेटी के हाथ में थमा देता रिबन / टॉफी / चूड़ियां
उसके लिए आंगन / गली कुन कुनी धूप हैं.
बेटी के हाथ में
बाजार से लाया थैला थमा देता
उसके लिए समय, बंद खिड़की दरवाजा हैं
अब जब भी लौटता हूं दफ़्तर से
मेरे हाथ में नहीं होता
गुड्डे / गुड़िया / गुब्बारे, रिबन / चूड़ियां
मेरी बेटी बड़ी हो चली
उसके लिए घर / आँगन / गली
चुभते कांटों से कम नहीं हैं.

बी - ६१ मोती कुंज एक्सटेंशन, २८१००१ (मथुरा)

ग़ज़ल

✍ *विमल कुमार 'अमन'*

बीज नफरत के ज़मीं में, बो रहा है आदमी.
मुफ्त एक इल्जाम सर पे, ढो रहा है आदमी.
क्यों सुकूं मिलता है बस अब, गैर के आगोश में.
अपनों से ही दूर कितना, हो रहा है आदमी.
चढ़ रहा है क्यों हवस सा, आज बस सबको नशा.
खुद ही अपनी बेबसी पर, रो रहा है आदमी.
आज फिर अपना वतन है, मुश्किलों के गर्त में.
जागने के वक़्त देखो, सो रहा है आदमी.
है बदलती इस फिज़ा का, आज ये कैसा आसरा.
खून से ही दाग़ अपने, धो रहा है आदमी.
मानते हैं अब बदलना, हो गयी दिलकश अदा.
फिर भी क्यों बस हादसों सा, हो रहा है आदमी.
छंट रहा है क्यों 'अमन,' इन्सानियत का ये धुआं.
आज फिर पहचान अपनी, खो रहा है आदमी.

सी. २४ /१, कबीर चौरा, वाराणसी

लेटर बॉक्स

बहरहाल, उनके अनुसार थोड़ा लिखा ज्यादा समझने में आनंद है. डॉ. धर्मवीर भारती, सरस्वती कुमार 'दीपक', राम मनोहर त्रिपाठी, प्रियदर्शी, कैलाश सेंगर, आलोक भट्टाचार्या, सुमन सरीन हस्तीमल 'हस्ती,' पं. नंदलाल पाठक, वीरेंद्र मिश्र आदि के निकट आने के लिए - फाका मस्ती, पवई-मालाड की पदयात्रा, आर्थिक विपन्नता बंबई में सफलता के लिए सोपान हैं उन्हें चढ़ना ही पड़ा. शायद 'अयोध्यावासी' तख़ल्लुस ने सफलता के शिखर पर पहुंचाया - बधाई मिश्रजी !

'सागर/सीपी' स्तंभ में हिमांशु जोशी से भेंटवार्ता बड़ी रुचिकर, प्रेरणादायी एवं ज्ञानवर्धक है. हिमांशु जोशी जी १९६२ से लिखते ही चले आ रहे हैं. अथक, अनपेक्षित! वे उन गिने चुने अति सौभाग्यशाली लेखकों में अपने आपको नहीं पाते जो मात्र आठ दस कहानियां या एक दो उपन्यास लिखकर अमरत्व को प्राप्त हो गये. 'आलोचकों की अनुकंपा से उन्हें इतना मिला कि भविष्य में उन्हें कुछ लिखने की आवश्यकता अनुभव नहीं हुई.' जोशी जी ने कहा - 'मेरे हिसाब से लिखना चौबीस घंटे के दिन रात में पूरे पच्चीस घंटे का काम है.' मनन करने योग्य बात है - कुछ बड़ा बनने के लिए कुछ छोटा होना अनिवार्य हो रहा है यह बात भी विचारणीय है. लिखते रहना और नम्र बने रहना हिमांशु जोशी को साहित्य जगत का अपरिग्रह आदर्श बना देते हैं.

'आइरिस के निकट' कहानी को प्रथम पुरस्कार मिलना चाहिए था.

पृष्ठ -३ का शेष भाग

देवदत्त वाजपेयी,

५१, शांति निकेतन, अणुशक्ति नगर, मुंबई - ४०० ०९४

⌘ 'कथाबिंब' का अप्रैल-जून २००१ अंक मिला. कहानियां, लघुकथाएं, गीत, ग़ज़ल, कविताएं, समीक्षा आदि सभी कुछ तो है उक्त अंक में, और फिर 'आमने-सामने', 'सागर-सीपी' स्तंभ के तो क्या कहने...! श्री हिमांशु जोशी से बातचीत जहां वरिष्ठ लेखकों के लिए चिंतन का विषय होगी, वहीं कनिष्ठों के लिए चिंतन के साथ-साथ प्रेरणा का स्रोत भी. सफल संपादन हेतु आपको साधुवाद.

सतीश तिवारी 'सरस'

मोहद (करेली), नरसिंहपुर (म. प्र.)

⌘ 'कथाबिंब' का अप्रैल-जून अंक पूर्ववत अपनी सराहनीय सामग्री के रहते श्लाघनीय है. विधा विविधा की दृष्टि से भी इसमें रिपीटीशन नहीं होता. संपादकीय समेत पहले स्तंभ पढ़ता हूं फिर काव्य रचनाएं, कथाएं भी. समय के तेवर रचना में हैं तो वह बोलती है. 'कथाबिंब' की सामग्री में यह ख़ूबी है.

सामाजिक सरोकारों के साथ 'कुछ कही, कुछ अनकही' में काफी कुछ कहा गया है. वैज्ञानिक-साहित्यिक नज़रिया भी उम्दा है.

प्रो. फूलचंद मानव,

अध्यक्ष हिंदी विभाग,
गवर्नमेंट कॉलेज, मोहाली-१६००५५ (पंजाब)

हमकदम लघु-पत्रिकाएं

(प्रस्तुत सूची में यदि कोई त्रुटि रह गयी हो या किसी पत्रिका का प्रकाशन बंद हो गया हो तो कृपया सूचित करें.)

बराबर (पा.) - ए. पी. अकेला, ५ यतीश विजनेस सेंटर, इर्ला सोसायटी रोड, विलेपार्ले (प.), मुंबई - ४०० ०५६
कथादेश (मा.) - हरिनारायण, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., १००९ इंद्रप्रकाश बिल्डिंग, २१ बाराखंभा रोड, नयी दिल्ली - ११०००१
तिब्बत देश (मा.) - विजय क्रांति, १० रिंग रोड, लाजपत नगर-४, नयी दिल्ली - ११० ०२४
दाल-रोटी (मा.) - अक्षय जैन, १३ रश्मन अपार्टमेंट, एस. एल. रोड, मुलुंड (प.), मुंबई - ४०० ०८०
वागर्थ (मा.) - प्रभाकर श्रोत्रिय, भारतीय भाषा परिषद, ३६-ए, शेक्सपीयर सरणी, कलकत्ता - ७०० ०१७
साहित्य अमृत (मा.) - विद्यानिवास मिश्र, ४/१९ आसफ अली मार्ग, नयी दिल्ली - ११० ००२
शुभ तारिका (मा.) - उर्मि कृष्ण, ए-४७ शास्त्री कॉलोनी, अंबाला छावनी - १३३ ००१
शिवम् (मा.) - विनोद तिवारी, जय राजेश, ए-४६२, सेक्टर-ए, शाहपुरा, भोपाल - ४६२ ०३९
अरावली उद्घोष (त्रै.) - बी. पी. वर्मा 'पथिक', ४४८ टीचर्स कॉलोनी, अंबामाता स्कीम, उदयपुर ३१३ ००४
अपूर्व जनगाथा (त्रै.) - डॉ. किरन चंद्र शर्मा, डी-७६६, जनकल्याण मार्ग, भजनपुरा, दिल्ली - ११० ०५३
अभिनव प्रसंगवश (त्रै.) - डॉ. वेदप्रकाश अभिताभ, ४/१०६, मोती मिल कंपाउंड, अलीगढ़ (उ. प्र.)
असुविधा (त्रै.) - रामनाथ शिवेंद्र, ग्राम-खड़ुई, पो. पन्नूगंज, सोनभद्र - २३१ २१३ (उ. प्र.)
अक्षरा (त्रै.) - गोविंद मिश्र, मं. प्र. रा. समिति, हिंदी भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल - ४६२ ००२
आकंठ (त्रै.) - हरिशंकर अग्रवाल / अरुण तिवारी, महाराणा प्रताप वार्ड, पिपरिया ४६१ ७७५ (म. प्र.)
अंचल भारती (त्रै.) - डॉ. जयनाथ मणि त्रिपाठी, ६/५४ देवरिया-रामनाथ, देवरिया - २७४ ००१
अंतरंग (त्रै.) - प्रदीप बिहारी, चतुरंग प्रकाशन, मेनकायन, न्यू कॉलोनी, उलाव, बेगूसराय - ८५१ १३४
अंतरंग संगिनी (त्रै.) - दिव्या जैन, गोविंद निवास, सरोजिनी रोड, विलेपार्ले (प.), मुंबई - ४०० ०५६
कंचन लता (त्रै.) - भरत मिश्र 'प्राची', डी-८, सेक्टर-३ए, खेतड़ी नगर - ३३३ ५०४
कृति और (त्रै.) - विजेंद्र, सी-१३३, वैशाली नगर, जयपुर - ३०२ ०२१
कथन (त्रै.) - रमेश उपाध्याय, १०७, साक्षरा अपार्टमेंट्स, ए-३, पश्चिम विहार, नयी दिल्ली - ११० ०६३
कथा समवेत (त्रै.) - शोभनाथ शुक्ल, कल्लूमल मंदिर, सब्जी मंडी, चौक, सुल्तानपुर - २२८ ००१
कारवां (त्रै.) - कपिलेश भोज, पो. सोमेश्वर, अल्मोड़ा - २६३ ६३७
कल के लिए (त्रै.) - डॉ. जयनारायण, 'अनुभूति', प्लानिंग कॉलोनी, अलीगढ़ (उ. प्र.)
कहानीकार (त्रै.) - कमल गुप्त, के ३०/३६ अरविंद कुटीर, वाराणसी २२१ ००१
गीतकार (त्रै.) - साथी छतावरी, ९३३/२ तंवर मार्ग, नज़फगढ़ रोड, नयी दिल्ली - ११० ०१५
गुंजन (त्रै.) - मोहन सिंह रावत, रोहिला लॉज परिसर, तल्लीताल, नैनीताल - २६३ ००२
तटस्थ (त्रै.) - डॉ. कृष्ण बिहारी सहल, विवेकानंद विला, पुलिस लाइन्स के पीछे सीकर - ३३२ ००१
तेवर (त्रै.) - कमलनयन पांडेय, १५८७/४, उदय प्रताप कॉलोनी, बढ़ैयावीर, सिविल लाइन्स, सुलतानपुर - २२८ ००१
दस्तक (त्रै.) - राघव आलोक, "साराजहां", मकदमपुर, जमशेदपुर - ८३१ ००२
दीर्घाबोध (त्रै.) - कमल सदाना, अस्पताल चौक, ईसागढ़ रोड, अशोक नगर ४७३ ३३१ (म. प्र.)
दीर्घा (त्रै.) - डॉ. विनय, २५ बैंग्लो रोड, कमला नगर, दिल्ली ११० ००७
निमित्त (त्रै.) - श्याम सुंदर निगम, १४१५, 'पूर्णिमा', रतनलाल नगर, कानपुर २०८ ०२२
निष्कर्ष (त्रै.) - गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, ५९ खैराबाद, दरियापुर रोड, सुलतानपुर - २२८ ००१
परिधि के बाहर (त्रै.) - नरेंद्र प्रसाद 'नवीन,' पीयूष प्रकाशन, महेंद्रू, पटना - ८०० ००६
पश्यंती (त्रै.) - प्रणव कुमार बंद्योपाध्याय, बी-१/१०४ जनकपुरी, नयी दिल्ली - ११० ०५८
प्रयास (त्रै.) - शंकर प्रसाद करगेती, 'संवेदना', एफ-२३, नयी कॉलोनी, कासिमपुर, अलीगढ़ - २०२ १२७
प्रेरणा (त्रै.) - अरुण तिवारी, सी-१६०, शाहपुरा, भोपाल - ४६२ ०१६
पुरुष (त्रै.) - विजयकांत, गोशाला रोड, मुजफ्फरपुर (बिहार)
भाषा सेतु (त्रै.) - डॉ. अंबाशंकर नागर, हिंदी साहित्य परिषद, २ अमर आलोक अपार्टमेंट, बालवाटिका, मणिनगर, अहमदाबाद - ३८० ००८
मसि कागद (त्रै.) - डॉ. श्याम सखा 'श्याम,' १२ विकास नगर, रोहतक १२४ ००१
मुहिम (त्रै.) - बच्चा यादव / रणविजय सिंह सत्यकेतु, रचनाकार प्रकाशन, गुरुद्वारा मार्ग, पूर्णिया - ८५४ ३०१
युग साहित्य मानस (त्रै.) - सी. जय शंकर बाबु, १८/७९५/एफ/८-ए, तिलक नगर, गुंतकल - ५१५ ८०१ (आं. प्र.)
युगीन काव्या (त्रै.) - हस्तीमल 'हस्ती,' २८ कालिका निवास, नेहरू रोड, सांताक्रुज, मुंबई - ४०० ०५५
वर्तमान जनगाथा (त्रै,) - बलराम अग्रवाल, डी-२२ शांतिपथ, पत्रकार कॉलोनी, तिलक नगर, जयपुर - ३०२ ००४
शब्द-कारखाना (त्रै.) - रमेश नीलकमल, अक्षरविहार, अवंतिका मार्ग, जमालपुर - ८११ २१४ (बिहार)
संदर्भ (त्रै.) - संगीता आनंद, चुरू कोढ़ी हाता, मोराबादी, रांची ८३४ ००८

सार्थक (त्रै.) - मधुकर गौड़, डी-३ शांतीनगर, दत्त मंदिर रोड, मलाड (पू.), मुंबई - ४०० ०९७
संबोधन (त्रै.) - कमर मेवाड़ी, पांदपोल, कांकरोली - ३१३ ३२४
समकालीन सृजन (त्रै.) - शंभुनाथ, २० बालमुकुंद मक्कर रोड, कलकत्ता - ७०० ००७
साखी (त्रै.) - केदारनाथ सिंह, प्रेमचंद साहित्य संस्थान, प्रेमचंद पार्क, बेतिया हाता, गोरखपुर - २७३ ००१
सदभावना दर्पण (त्रै.) - गिरीश पंकज, जी-५० नया पंचशील नगर, रायपुर - ४९२ ००१
समझ (त्रै.) - डॉ. सोहन शर्मा, ए/१२ दीपसागर, पंतकी बाग के पास, अंधेरी (पू.), मुंबई - ४०० ०६९
सार्थक (त्रै.) - मधुकर गौड़, १/ए/३०३ ब्ल्यू ओसन, ब्ल्यू एंपायर कॉम्पलेक्स, महावीर नगर, कांदिवली (प.), मुंबई - ४०० ०६७
संदर्भ (त्रै.) - संगीता आनंद, चुरू कोठी हाता, मोराबादी, रांची - ८३४ ००८
संयोग साहित्य (त्रै.) - मुरलीधर पांडेय, २०४/'ए' चिंतामणि अपार्टमेंट, आर.एन.पी. पार्क, काशी विश्वनाथ नगर, भयंदर, मुंबई - ४०११०५
स्वातिपथ (त्रै.) - कृष्ण 'मनु', साहित्यांजन, बी-३/३५, बालुडीह, मुनीडीह, धनबाद - ८२८ १२९
शब्द संसार (त्रै.) - संजय सिन्हा, पो. बॉक्स नं, १६४, आसनसोल ७१३३०१
शुरुआत (त्रै.) - वीरेंद्र कुमार श्रीवास्तव, ३० आकाश गंगा परिसर, पुरानी बस्ती, मनेंद्रगढ़
शेष (त्रै.) - हसन जमाल, पन्ना निवास के पास, लोहार पुरा, जोधपुर -३४२ ००२
हिंदुस्तानी ज़बान (त्रै.) - डॉ. सुशीला गुप्ता, महात्मा गांधी बिल्डिंग, ७ नेताजी सुभाष रोड, मुंबई - ४०० ००२
अविरल मंथन (छ.) - राजेंद्र वर्मा, ३/२९ विकास नगर, लखनऊ - २२६ ०२०
अब (अ.) - शंकर / अभय / नर्मदेश्वर, ७४ इ, गोरक्षिणी पथ, ससाराम - ८२१ ११५
उत्तरार्द्ध (अ.) - विजयलक्ष्मी, ३८८ राधिका बिहार, मथुरा - २८१ ००४
कला (अ.) - कलाधर, नया टोला, लाइन बाजार, पूर्णियां - ८५४ ३०१
पुनः (अ.) - कृष्णानंद कृष्ण, दक्षिणी अशोक नगर, पथ सं-८बी, कंकड़ बाग, पटना - ८०० ०२०
सरोकार (अ.) - सदानंद सुमन, रानीगंज, मेरीगंज, अररिया - ८५४ ३३४
समीचीन (अ.) - डॉ. देवेश ठाकुर, बी-२३ हिमाचल सोसायटी, असल्फा, घाटकोपर (पू.), मुंबई ४०० ०८४
सम्यक (अ.) - मदन मोहन उपेंद्र, ए-१० शांतिनगर (संजय नगर), मथुरा २८१ ००१

'कथाबिंब' यहां भी उपलब्ध है :

- **पीपुल्स बुक हाउस**, मेहर हाउस, १५ कावसजी पटेल स्ट्रीट, मुंबई - ४०० ००१. फोन : २८७ ३७३८
- **व्यवस्थापक बुक कॉर्नर**, श्रीराम सेंटर, सफ़दर हाशमी मार्ग, नयी दिल्ली ११० ००१.
- **डॉ. देवकीनंदन**, ए-१/३०४, हृषीकेश, स्वामी समर्थ नगर, लोखंडवाला कॉम्प्लेक्स, अंधेरी (प.), मुंबई - ४०००५३. फोन : ६३२ ०४२५
- **श्री वीरेंद्र सिंह चंदेल**, १३६ तलैय्या लेन, परेड ग्राउन्डस, फतेहगढ़ - २०९६०१
- **श्री रविशंकर खरे**, हरिहर निवास, माधोपुर, गोरखपुर - २७३००१.
- **श्री राजेंद्र आहुति**, ए १३/६८, भगतपुरी, वाराणसी-२२१००१.
- **स ब द**, १७१ कर्नलगंज, स्वराज भवन के सामने, इलाहाबाद - २११००२.
- **डॉ. गिरीश चंद श्रीवास्तव**, ५९ खैराबाद, दरियापुर रोड, सुलतानपुर-२२८००१. फोन : २३२८५
- **श्री अनिल अग्रवाल**, परिवेश लघु पत्रिका मंडप, पुराना गंज, रामपुर-२४४९०१. फोन : ३२७३६१
- **श्री योगेंद्र दवे**, ब्रम्हपुरी, पीपलिया, जोधपुर-३४२००१
- **श्री राही सहयोग संस्थान**, शकुंतला भवन, बालाजी के मंदिर के पास, वनस्थली-३०४ ०२२ (राज.). फोन : २८३६७
- **श्री भुवनेश कुमार**, सं : कविता, २२० सेक्टर-१६, फरीदाबाद - १२१००२
- **श्री गोविंद अक्षय**, अक्षय फीचर सर्विसेस, १३-६-४११/२, रामसिंहपुरा, कारवान, हैदराबाद - ५०००६७.
- **श्री नूर मुहम्मद 'नूर'**, सी. सी. एम. क्लैम्स लॉ, दक्षिण पूर्व रेल्वे, ३, कोयला घाट स्ट्रीट, कलकत्ता - ७००००१
- **श्री संजय सिन्हा**, पोस्ट बॉक्स नं. १६४, आसनसोल-७१३३०१
- **श्री देवेंद्र सिंह**, देवगिरी, आदमपुर घाट मोड़, भागलपुर - ८१२००१.
- **व्यवस्थापक**, सर्वोदय बुक स्टाल, रेल्वे स्टेशन, भागलपुर - ८१२००१.
- **श्री कलाधर**, आदर्श नगर, नया टोला, पूर्णियां - ८५४३०१.
- **मेसर्स लाल मणि साह**, आर.एन.साव. चौक, पूर्णिया - ८५४३०१.
- **श्री महेंद्र नारायण पंकज**, राजकीय प्राथमिक विद्यालय, पैकपार, मेरीगंज, अररिया - ८५४३३४.
- **श्री बसंत कुमार**, दीर्घतपा, वार्ड-६, अररिया -८५४३३४.
- **सुश्री मेनका मल्लिक**, चतुरंग प्रकाशन, न्यू कॉलोनी, उलाव, बेगूसराय - ८५११३४
- **श्री रणजीत बिहारी**, पत्रिका मंडप, पंचवटी, चीरागोड़ा, धनबाद - ८२६००१.
- **श्री प्रभात कुमार चौधरी**, प्रभात स्टेशनरी (दूकान नं.१), आयकर चौराहा, लालबाग, दरभंगा - ८४६ ००८.
- **श्री देवेंद्र होलकर**, १८८ सुदामा नगर, अन्नपूर्णा सेक्टर, इंदौर - ४५२००९. फोन : ४८४ ४५२
- **श्री मिथिलेश 'आदित्य'**, पोस्ट बॉक्स-१, मेनरोड, जोगबनी - ८५४३२८

'रेवा सक्सेना स्मृति पुरस्कार'

अभिमत पत्र

वर्ष २००१ के सभी अंकों में प्रकाशित कहानियों के शीर्षक / रचनाकारों के नाम के साथ नीचे दिये गये हैं. पाठक अपनी पसंद का क्रम (१,२,३,...७,८) सामने के खाने में लिखकर हमें भेजें. आप चाहें तो इस *अभिमत पत्र* का प्रयोग करें अथवा आठ कहानियों का क्रम अलग से एक पोस्टकार्ड पर भी लिख कर भेज सकते हैं. प्राप्त अभिमतों के आधार पर वर्ष २००० की तरह ही प्रथम (१००० रु.- एक), द्वितीय (७५० रु. - दो) व प्रोत्साहन (५०० रु. के तीन) पुरस्कार घोषित किये जायेंगे. जिन पाठकों की भेजी क्रमवार सूची अंतिम सूची से मेल खायेगी उन्हें **'कथाबिंब'** की **त्रैवार्षिक सदस्यता (१२५ रू.)** प्रदान की जायेगी. ये पुरस्कार जैसा कि विदित ही है **श्री उमेश चंद्र सक्सेना** द्वारा अपनी पत्नी की स्मृति में दिये जाते हैं.

कहानी शीर्षक / रचनाकार	आपका क्रम
१. दुर्घटना - *कृष्णानंद 'कृष्ण'*	
२. मां, मुनु कब आयेगी - *प्रतिभू बनर्जी*	
३. मैकी - *डॉ. साधना शुक्ला*	
४. पापा की तलाश में - *सदाशिव 'कौतुक'*	
५. काके की गड्डी - *राजेंद्र सिंह गहलौत*	
६. पांच सवाल और शौकीलाल जी - *कृष्ण 'मनु'*	
७. अरे जाने दो - *पी. एन. जायसवाल*	
८. रणछोड़ सिंह - *विजय*	
९. अंजुम तुम लौट आओ - *संगीता आनंद*	
१०. हम ज़िंदा हैं - *उषा भटनागर*	
११. संदेह के घेरे - *धनजीत कौर*	
१२. बीच का रास्ता - *पंकज कुमार*	
१३. कर्फ्यू - *नरेंद्र कौर छाबड़ा*	
१४. दस का नोट - *रमेश कुमार पांड्या*	
१५. समर्पण - *सतीश दुबे*	
१६. सवाल-दर-सवाल - *कनक लता*	
१७. दरार - *जसवंत सिंह 'विरदी'*	

: प्राप्ति - स्वीकार :

यह **अंत नहीं** (उपन्यास) : मिथिलेश्वर, किताब घर प्रकाशन, २४ अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२ मू. २५० रु.
कुर्राटी (उपन्यास) : डॉ. सतीश दुबे, दिशा प्रकाशन, १३८/१६ त्रिनगर, दिल्ली-११००३५ मू. १५० रु.
परिशोध (उपन्यास) : राम सहाय वर्मा, समकालीन प्रकाशन, २७६२ राजगुरू मार्ग, नयी दिल्ली-११००५५ मू. १०० रु.
इक्कीस कहानियां (कहानी संग्रह) : डॉ. रूपसिंह चंदेल, सुनील साहित्य सदन, ३३२०-२१, जटवाड़ा, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२ मू. २०० रु.
चल ख़ुसरो घर आपने (कहानी संग्रह) : मिथिलेश्वर, भारतीय ज्ञानपीठ , १८ इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-११०००३ मू. ४० रु.
रिक्टर (कहानी संग्रह) : सदाशिव कौतुक, पड़ाव प्रकाशन, एच-३, उद्धवदास मेहता परिसर, नेहरू नगर, भोपाल-४६२००३ मू.१०० रु.
रक्तदीप (कहानी संग्रह) : राज केसरवानी, ३/४ सेंट्रल एक्साइज कॉलोनी, रेसीडेंसी एरिया, इंदौर-४५२००१ मू. ६० रु.
आखिर कब तक (कहानी संग्रह) : डॉ. परमलाल गुप्त, पियूष प्रकाशन, नमस्कार, बस स्टैंड के पीछे, सतना-४८५००१ मू. ४० रु.
राजा नंगा हो गया (लघुकथा संग्रह) : सुनीता सिंह, मीनाक्षी प्रकाशन, डी-६२ लक्ष्मी नगर, दिल्ली-११००९२ मू. ८० रु.
तुम्हारा कमलेश्वर (पत्र-संकलन) : कमलेश्वर, राजपाल एंड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली-११०००६ मू. १२५ रु.
वैष्णवों से वार्ता (साक्षात्कार) : बलराम, नीलकंठ प्रकाशन, १/१०७९ ई, महरौली, नयी दिल्ली-११००३० मू. २७५ रु.
साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष के एजेंडा पर कुछ नोट्स (निबंध) : डॉ. सोहन शर्मा, संयोग प्रकाशन, २०४ ए चिंतामणि अपार्टमेंट , काशी विश्वनाथ नगर, भायंदर (पू.) मुंबई-४०११०५ मू. २५० रु.
विश्व सुंदरी (काव्य) : निर्मला भुराड़िया, मनस्वी प्रकाशन, एम-८, कृष्णदीप कॉम्प्लेक्स, महारानी रोड, इंदौर-४५२००१ मू. १००रु.
सरस्वती लुप्त नहीं हुई (काव्य) : संतोष बंसल, विचार प्रकाशन, डी-७६६ जनकल्याण मार्ग, भजनपुरा, दिल्ली-११००५३ मू. १२५रु.
खुशबू अंतहीन (काव्य) : अक्षय गोजा, सन्मार्ग प्रकाशन, १६ यू. बी. वैंग्लो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-११०००७ मू. ९० रु.
सीप में समुंदर (ग़ज़ल) : रामसनेही 'यायावर,' कलरव प्रकाशन, १२४७/८६ शांतिनगर, त्रिनगर, दिल्ली-११००३५ मू. १००रु.
इस तरह से ये समय (कविता) : वीरेंद्र गोयल, राधाकृष्ण प्रकाशन, जी-१७ जगतपुरी, दिल्ली-११००५१
बहकती हवाएं (काव्य संकलन) : देवेंद्र 'विमल,' लोकवार्ता प्रकाशन, रावर्ट्सगंज, सोनभद्र (उ. प्र.) मू. ८० रु.
दिहाड़ी में प्यार (कविता) : राजेश झरपुरे, आज़ाद प्रकाशन, टाल रोड, तेंदू खेड़ा, नरसिंहपुर-४८७३३७ (म. प्र.) मू. ४० रु.
वक़्त के परीने (गीतिका संकलन) : देवेंद्र 'विमल,' लोकरुचि प्रकाशन, रावर्ट्सगंज, सोनभद्र (उ. प्र.) मू. ५०रु.
स्वप्न-नीड़ (आंसू-काव्य) : डॉ. अमरनाथ दुबे, ७ जगदीश भवन, कोल डोंगरी, सहार मार्ग, अंधेरी (पू.), मुंबई-४०००६९ मू. ४५ रु.

निवेदन

रचनाकारों से

'कथाबिंब' एक कथा प्रधान त्रैमासिक पत्रिका है. कहानी के अलावा लघुकथाओं, कविता, गीत, ग़ज़लों का भी हम स्वागत करते हैं. कृपया पत्रिका के स्वभाव और स्तर के अनुरूप अपनी श्रेष्ठ रचनाएं ही प्रकाशनार्थ भेजें.

१. कृपया केवल अपनी अप्रकाशित और मौलिक रचनाएं ही विशेष रूप से **'कथाबिंब'** में प्रकाशन के लिए भेजें. निर्णय तक वह रचना अन्यत्र कहीं न भेजें. अनूदित रचनाओं के साथ मूल लेखक की अनुमति आवश्यक है.
२. रचनाएं कागज़ के एक ओर अच्छी हस्तलिपि में हों अथवा टंकित करवा कर भेजें.
३. रचनाओं की प्रतिलिपि अपने पास रखें. वापसी के लिए स्व-पता लिखा, टिकट लगा लिफाफा अवश्य साथ रखें.
४. सामान्यतः प्रकाशनार्थ आयी कहानियों पर एक माह के भीतर निर्णय ले लिया जाता है, अन्य रचनाओं की स्वीकृति/अस्वीकृति की अवधि दो से तीन माह हो सकती है.

ग्राहकों / सदस्यों से

कृपया समय रहते अपने शुल्क का नवीनीकरण करा लें. *नये सदस्यों/ग्राहकों को शुल्क प्राप्त होने की अलग से सूचना भेजना संभव नहीं है.* यदि तीन माह के भीतर नया अंक न मिले तो कृपया अवश्य सूचित करें.

Marriages are made in heaven and solemnised only at Shikara, "The Mini Kashmir of Navi Mumbai"

LARGEST MARRIAGE HALL SPREAD OVER AN AREA OF 15,000 SQ. FT.

- 5-star food and services at 3 star rates
- Banquet Services
- Ample parking space
- Choice of 5 party halls, 25-1000 persons capacity
- Traditional functions can be organised in Separate venues for Ladies and Gentlemen
- Outdoor Catering is our Speciality
- Also available are Mehendi person, Palmist, Magician, Ghazal Singers, Amusement park for children in the most elegantly designed Mini Kashmir of Navi Mumbai - Shikara

With every booking avail our bonanza offer of Two 5 star Super Deluxe room for 2 night stay

AN ALLURING LANDMARK IN NEW BOMBAY

SHAMIANA

The Meeting Place

FOR BUSINESS AND PLEASURE

with fine blending of traditional interiors, delicacies & a well stocked bar always remainest an opulance of wonder to especially you highway user...

SHAMIANA IS NOW OPEN FOR REGULAR SERVICES . . .

SHIKARA RESTAURANT

HOTEL HIGHWAY VIEW

Plot No3, Opp. Sanpada Railway Station, Mumbai - Pune Road, Navi Mumbai - 400 705.

✆ 765 21 95 / 767 21 96 / 767 21 97 Fax : 767 21 99 / 762 12 26

e-mail : highway@indianbusiness.com web-site : www.indianbusiness.com/hotelhighwayview

मंजुश्री द्वारा संपादित व आर्ट होम, शांताराम साळुंके मार्ग, घोड़पदेव, मुंबई - ४०० ०३३ में मुद्रित.
टाइप सेटर्स : वन-अप प्रिंटर्स, १२वां रास्ता, द्वारका कुंज, चेंबूर, मुंबई - ४०० ०७१. फो. : ५५५ २३४८ व ५५६ ६२८४.